—: ओ३म् :—

वेदवाणी

श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट (अमृतसर) की मासिक पत्रिका

वर्ष ४७] वयं जयेम (ऋक्) [अङ्क २

इस अङ्क के लेख

१—हे परमेश्वर ! हमें द्वेष-सागर से पार उतार	'वैदिक विनय से'	१
२—क्या आप दैनिक देव-यज्ञ करते हैं ? (६)	पं० अर्जुनदेव स्नातक	२
३—तेजस्वी परमेश्वर का गुणगान	डा० व० द० घवन	८
४—द्वा सुपर्णा	श्री वी० उपेन्द्रराव	१३
५—पर्यायों की तुलना द्वारा वेद का स्वाध्याय	श्री मनोहर विद्यालंकार	१५
६—श्रद्धाञ्जलि	श्री शिवदत्त शर्मा	१८
७—श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर	प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	२०
८—पण्डित भगवद्दत्त बी० ए०	पं० चन्द्रकान्त जी बाली	२३
९—वेदपुरुषा: पं० भगवद्दत्त महाभागा:	सीताराम सहगल	२६
१०—पुस्तक-समीक्षा	विपाश	२७
११—समाचार-संग्रह	—	२८
१२—दान-सूची	टाइटल पेज २ पर	
१३—विज्ञापन	अन्त में	

आद्य सम्पादक—श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, द्वितीय सम्पादक—श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक

सम्पादक—विजयपाल विद्यावारिधि

मार्गशीर्ष सं० २०५१ वि०
दिसम्बर १९९४ ई०
दयानन्दाब्द १६९
वेद तथा सृष्टि सं० १९७२९४९०९४

वार्षिक मूल्य भारत में २५-००
,, ,, विदेशों में १००-००
इस अङ्क का २-५०

वेदवाणी कार्यालय,
बहालगढ़, (सोनीपत-हरयाणा) १३१०२१

वेदवाणी के नियम

१—यह पत्रिका प्रतिमास की प्रथम तारीख को प्रकाशित हुआ करती है। यदि पत्रिका १० तारीख तक न पहुंचे, तो तत्काल सूचना मिलने पर पुनः भेजी जा सकेगी।

२—वार्षिक मूल्य रुपये मनीआर्डर द्वारा अग्रिम भेजें। वी० पी० से नहीं भेजी जायेगी।

३—वेदवाणी की आजीवन सदस्यता का शुल्क भारत में ३००/- रुपया है।

४—वार्षिक चन्दा **मनीआर्डर** से भेजें। कूपन पर ग्राहक नम्बर लिखना न भूलें। आजीवन सदस्यता का शुल्क **मनीआर्डर** अथवा **ड्राफ्ट** से भेजें। **पोस्टल आर्डर तथा चैक से रुपया स्वीकार नहीं किया जायेगा। ड्राफ्ट 'व्यवस्थापक वेदवाणी कार्यालय' के नाम से भेजें।**

५—लेख **'सम्पादक वेदवाणी'** के नाम आने चाहियें, लेख छोटे, सरल, संक्षिप्त, सारगर्भित तथा मौलिक होने चाहियें, और वे स्पष्ट और शुद्ध कागज पर, एक ओर साफ़ लिखे होने चाहिए। उनका प्रकाशित करना न करना तथा संशोधन करना सम्पादक के अधीन होगा। अस्वीकृत लेख पोस्टेज प्राप्त होने पर ही लौटाये जायेंगे।

६—वेदवाणी के नये वर्ष का प्रारम्भ कार्त्तिक (नवम्बर) मास से होता है। प्रतिवर्ष एक या **दो विशेषाङ्क** दिये जाते हैं।

७—वार्षिक मूल्य, विज्ञापन सम्बन्धी धन और व्यवस्था सम्बन्धी समस्त पत्र **'व्यवस्थापक वेदवाणी'** के पते से भेजें, **किसी व्यक्ति के नाम से न भेजें।**

पता—व्यवस्थापक-वेदवाणी कार्यालय, जी० टी० रोड़,
बहालगढ़-१३१०२१ (सोनीपत-हरयाणा)

रामलाल कपूर ट्रस्ट को दान में प्राप्त धनराशि

दान में प्राप्त धनराशि		पाणिनि महाविद्यालय को प्राप्त छात्रवृत्ति	
श्रीमती रेणू कपूर—बम्बई	५०१.००	श्री संजय प्रीती सेठी—यू० एस० ए०	३६००.००
श्री ऋषभ आर० मेहरा—बम्बई	४००.००	श्रीमती श्रेष्ठा मेहरा—यू० एस० ए०	२५००.००
श्री ज्योत्सना मित्र—अमृतसर	२५०.००	श्री बी० एस० कपूर—यू० एस० ए०	२५००.००
श्री रोहित सेठ—अमृतसर	२००.००	श्री सुगुण कपूर—यू० एस० ए०	११००.००
श्री जे० सी० कपूर—दिल्ली	५०.००	श्री देवमुनि जी वानप्रस्थ—बम्बई	१०५०.००
		श्री रविन्द्र सिंह—स० माधोपुर	१०००.००
	१४०१.००		११७५०.००

रामलाल कपूर ट्रस्ट स्थायी कोष को दान में प्राप्त धनराशि

मैसर्ज आदर्श इण्डस्ट्री—बम्बई		५०००,००
मैसर्ज कपूर इण्डस्ट्री—बम्बई		५०००.००
श्री वरुण शिल्पा कपूर—अमृतसर		११००.००
वारुनी धवन—अमृतसर	५ किलो घी	

सभी दान-दाताओं को हार्दिक धन्यवाद !

—व्यवस्थापक

ऋग्वेद | ओ३म् | यजुर्वेद

वेदवाणी

सामवेद | अथर्ववेद

सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि । अथर्व० १।१।४॥

वर्ष ४७ | मार्गशीर्ष सं० २०५१ वि०, १ दिसम्बर १९९४ ई० बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा) | अङ्क २

हे परमेश्वर ! हमें द्वेष-सागर से पार उतार

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ ऋ० ८।१६।११॥

शब्दार्थः—(सः) वह (पप्रिः) पूण करने वाले (पुरुहूत) बहुतों से पुकारे गये (इन्द्रः) परमेश्वर (नावा) नौका द्वारा, अपनी शरण-रूपी तरण साधन द्वारा (नः) हमें (स्वस्ति) कुशलता पूर्वक (विश्वा द्विषः अति) सब द्वेषों को लंघा कर (पारयाति) पार लगावे ।

विनयः—वे 'पप्रि' परमेश्वर और वे 'पुरुहूत' परमेश्वर हमें भी पार लगावें । हम उन प्रभु का स्मरण कर रहे हैं जो पूरण करने वाले हैं, कमियों को भरपूर कर देनेवाले हैं; और उन प्रभु को पुकार रहे हैं जिन्हें सन्त लोग सदा पुकारते रहे हैं और जिन्हें सभी लोग समय-समय पर पुकारते रहते हैं । वे ही प्रभु हमें इस द्वेष-सागर से पार लगावें । हम ने बहुत द्वेष किया है और बहुत द्वेष पाया है । बहुतों से शत्रुता की है और बहुतों को शत्रु बनाया है । हमें इस समय सब जगह अपने द्वेषी ही द्वेषी नजर आते हैं, सब जगह अपने शत्रु ही शत्रु नजर आते हैं । हम इन से कैसे पार उतरें ? यह और कुछ नहीं है, हमारे ही अन्दर की द्वेष भावना दुस्तर समुद्र बन कर हमारे सामने आ गई है । जब से हमें यह ज्ञान हुआ है, तब से हम उन 'पप्रि' प्रभु की ही याद में रहने लगे हैं । हम जान गये हैं कि यदि वे पूरण करने वाले हमें अपनी शरणरूपी नौका प्रदान कर देवें, तो हम कुशल क्षेम से इस भयंकर द्वेष-सागर को तर जायेंगे । हम जान गये हैं कि यदि हमारे

हृदय की क्षुद्रताओं के गढ़े भरपूर हो जायेंगे और हमारा हृदय विशाल और प्रभु-प्रेम से परिपूर्ण हो जायेगा, तो हमारे अन्दर द्वेष की वासना भी नहीं ठहर सकेगी। इसलिए अब हम उस पूरण करने वाले प्रभु को ही पुकार रहे हैं, बार-बार पुकार रहे हैं। ओह ! अब तो वे ही पुरुहूत 'पप्रि' परमेश्वर हमें इस द्वेष सागर से पार लगाव, इस दुस्तर सागर से पार लगावें।

[वैदिक विनय से]

क्या आप दैनिक देव-यज्ञ करते हैं ? (९)

[ले०—श्री पं० अर्जुनदेवजी स्नातक, ५ सीताराम भवन फाटक, आगरा केण्ट २८२००१]

गत लेख में ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना के तृतीय मन्त्र—"यः आत्मदा बलदा०" पर महर्षि दयानन्द कृत अर्थ की सार्थकता वर्णित की थी। महर्षि दयानन्द साक्षात् मन्त्र-द्रष्टा थे। उनके द्वारा किये गये अर्थ के गौरव को चिन्तन, मनन द्वारा पुष्ट करना प्रत्येक आर्य का कर्त्तव्य है। इसी विचारधारा के अनुसार हम इस प्रयास में संलग्न है। हमारा यह प्रयास कितना सार्थक हो रहा है, यह तो हमारे पाठक ही जान सकते हैं। कुछ पाठकों ने पत्र द्वारा उत्साह वधन भी किया है। उन्हें धन्यवाद है।

आइये, अब चतुर्थ मन्त्र पर विचार करें—

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

यह मन्त्र यजुर्वेद अध्याय २३ का तृतीय मन्त्र है। महर्षि ने संस्कार विधि में इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार किया है—

यः=जो प्राणतः=प्राणवाले और निमिषतः=अप्राणिरूप जगतः=जगत का महित्वा=अपने अनन्त महिमा से एक इत्=एक ही राजा=विराजमान राजा बभूव=है यः=जो अस्य=इस द्विपदः=मनुष्यादि और चतुष्पदः=गौ आदि प्राणियों के शरीर की ईशे=रचना करता है, हम लोग उस कस्मै=सुख स्वरूप देवाय=सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा के लिए हविषा=अपनी सकल उत्तम सामग्री से विधेम=विशेष भक्ति करें।

इस मन्त्र में ध्यान देने योग्य निम्न बातें हैं—

उस परमात्मा की महान् महिमा है। वह जड़-चेतन का अपनी महिमा से अकेला ही राजा है अर्थात् उसे सृष्टि की रचना में, सृष्टि के शासन में किसी अन्य की सहायता नहीं लेनी पड़ती है। वही परमेश्वर मनुष्यादि और गौ आदि प्राणियों के शरीर की भी रचना करता है। संसार में समस्त ऐश्वर्य का प्रदाता भी वही है। इस प्रकार जो कुछ भी हमारे पास है, वह सब उस ईश्वर की महान् देन है। उसके द्वारा प्रदत्त को हम ग्रहण करे तथा गृहीत सामग्री को समर्पित करते हुए, उस—"महतो महीयान्" की भक्ति करें ! यजुर्वेद अध्याय ३१ का १८वां मन्त्र है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।

मैं उस सर्वत्र परिपूर्ण पुरुष को जानता हूं जो महान् से महान् है, सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का रचना करने वाला है, वह स्वप्रकाशस्वरूप है, अज्ञानान्धकार अर्थात् अविद्यादि दोषों से रहित है। अतएव ऐसे महान् परमेश्वर को जानकर ही महान् दुःख मृत्यु को पार कर सकते हैं, मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। **"नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"**=अर्थात् ईश्वर की भक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई मुक्ति का, सांसारिक बन्धन से छूटने का, आवागमन के चक्र को समाप्त करने का मार्ग नहीं है।

उक्त मन्त्र के अभिप्राय को ही स्पष्ट करने वाला यह चतुर्थ मन्त्र है। महर्षि दयानन्द कृत अर्थ का वैशिष्टय इस प्रकार है—

यः प्राणतो निमिषतो=जो प्राणवाले और अप्राणिरूप।

महर्षि ने 'प्राणतो' का अर्थ तो प्राणवाले किया है। किन्तु 'निमिषतो' का अथ पलक झपकने वाला न करके अप्राणिरूप क्यों किया है? निश्चय से धातु कोश के अनुसार निमिष का अर्थ 'पलक झपकने वाला' ही होता है।

महर्षि ने 'प्राणतो' का अर्थ प्राण वाले किया है, और प्राणवाले से तात्पर्य चेतन प्राणी ही होता है। चेतन प्राणी है तो देखने के लिए नेत्र होंगे तो नेत्र संचालन भी आवश्यक है, यह नेत्र संचालन की क्रिया पलक झपकने के साथ होती है। वह परमपिता परमात्मा केवल चेतन जगत् का ही स्वामी नहीं है अपितु अचेतन जगत् का भी वही स्वामी है। अतः महर्षि ने प्राणतः प्राणवाले कहा तथा निमिषतः अप्राणिरूप यह अर्थ अर्थापत्ति के आधार पर किया है। अर्थापत्ति को शास्त्रों में प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणों में माना गया है। अतः महर्षि का 'निमिषतः' का अर्थ अप्राणिरूप करना पूर्ण तर्क सङ्गत है।

वैसे भी 'निमिषतः' का अर्थ पलक झपकने वाले करने से प्राणतः=प्राणवाले क्या पलक झपकने वाले नहीं होते हैं? अर्थ गौरव की रक्षार्थ भी प्राणवाले के बाद अप्राणिरूप अर्थ करना औचित्य की सीमा में ही आता है।

अथर्ववेद काण्ड ११, सूक्त ४, का १० वां मन्त्र है—

प्राणः प्रजा अनुवस्ते पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ।।

जैसे पिता अपने प्रिय पुत्र को वस्त्र से आच्छादित करता है, ऐसे ही प्राण मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट-पतंग आदि प्रजाओं के शरीरों में व्याप्त होकर बस रहा है। यत् च प्राणति=और जो जंगम वस्तु चलन आदि व्यापार कर रही है तथा यच्च न=जो स्थावर वस्तु प्राण रहित है अतः संचलन के व्यापार से रहित है उस सब का प्राणः सर्वस्य ईश्वरः=उस चराचर स्वरूप जगत् का चेतन स्वरूप प्राण(प्राणो हि प्रजापतिः—शतपथ)प्राण ही ईश्वर है अर्थात् सब का प्रेरक स्वामी है।

उक्त मन्त्र में स्पष्ट ही प्राणवाले से चेतन जगत् तथा प्राणरहित को अचेतन जगत् कहा है तथा इनका स्वामी ईश्वर कहा गया है। इस दृष्टि से महर्षि का अर्थ सङ्गत सिद्ध होता है।

शास्त्रों में—"**प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे**" (अथर्व० ११।४।१) के अनुसार प्राण नाम ईश्वर का भी है। तो प्राण क्या है, शरीर के लिए उसका क्या महत्त्व है, यह जान लेना आवश्यक है। निश्चय से प्राण से तात्पर्य उस शक्ति से है जिससे शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में गति आती है। गति ही तो जीवन का लक्षण है। यद्यपि प्राण द्वारा सञ्चालित गति को दिशा देने वाला जीवात्मा है। इतना होने पर भी जीवात्मा से भिन्न गतिशील तत्त्व प्राण का अपना विशेष महत्त्व है। इसको ऐसे समझ सकते हैं जैसे कार है, कार का चलाने वाला भी है किन्तु कार में गति पेट्रोल के माध्यम से होती है। बिना पेट्रोल के कार गति शून्य होती है। कार हो, पेट्रोल भी हो लेकिन बिना चालक के कार में गति नहीं होती है। ठीक ऐसी ही व्यवस्था ईश्वर ने शरीर में जीवात्मा एवं प्राण दोनों की समन्वयात्मक रूप से की है। इससे यह स्पष्ट है कि प्राण गतिशीलता, चेतनता, संचलन को देनेवाला है। वह ईश्वर मात्र चेतन जगत् का ही नहीं अपितु अप्राणिरूप=अचेतन जगत् का भी स्वामी है। इसी तत्त्व को स्पष्ट करने के लिए महर्षि ने प्राणवाले कहने के अनन्तर निमिषतः का अर्थ अर्थापत्ति के आधार पर जो अप्राणिरूप जगत् अर्थ किया है, वह समीचीन है।

जगतः महित्वा एक इत् राजा बभूव=जगत् का अपने अनन्त महिमा से एक ही विराजमान राजा है।

निश्चय से वह परमेश्वर ही चेतनाचेतन जगत् का अपनी विशाल महत्ता से अकेला ही विराजमान=संसार में व्यापक (सर्वव्यापक) राजा है, स्वामी है या अधिष्ठाता है। अतएव वह एक ही नमन योग्य है। अन्य कोई भी उसके समक्ष नमस्कार करने योग्य नहीं हैं। वही राजा है, एक है अनेक नहीं—

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विश्वमीड्यः।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम्॥ अथर्व० २।२।१॥

जो दिव्यः गन्धर्वः=आश्चर्यकारक गन्धर्व(गां भूमिं धारयतीति गन्धर्वः) भुवनों का धारण करनेवाला है वही विक्षु=प्रजाओं में नमस्यः=नमस्कार करने योग्य है और ईड्यः=प्रशंसनीय=स्तुति करने योग्य है। हे दिव्यदेव=हे अद्भुत परमेश्वर! तं त्वा=उस आपको मैं ब्रह्मणा=ज्ञान द्वारा यौमि=प्राप्त होता हूं नमस्ते अस्तु=आपको नमस्कार हो। ते सधस्थम्=तेरा वास, निवास दिवि=प्रकाशमान् चराचर जगत् में है।

उक्त मन्त्र भी उसको एकमात्र चराचर जगत् का अधिष्ठाता वर्णित कर रहा है। यहाँ एक स्वाभाविक प्रश्न उठ सकता है कि वह अकेला है, एकमात्र है, तो समस्त विश्व की रचना, पालन तथा विनाश कैसे कर देता है?

इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार है। अल्पशक्ति वाले, अल्प सामर्थ्यवाले, साकार एकदेशीय व्यक्ति को किसी रचना के लिए हाथ-पैर आदि साधनों की आवश्यकता होती है किन्तु सर्व-

शक्तिमान्, सर्वसामर्थ्यवाले, निराकार सर्वव्यापक को सृष्टि-रचना के लिए किसी भी साधन की आवश्यकता नहीं होती है। श्वेताश्वतर उपनिषद ३।२६ का वचन इस तथ्य का समाधान इन शब्दों में करता है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता। पश्यत्यचक्षुः संशृणोत्यकर्णः।
न तस्य कार्यं कारणं च विद्यते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

वह बिना हाथों के पकड़ सकता है, बिना पैरों के चल सकता, वह बिना आंखों के देख सकता है और बिना कानों के सुन सकता है। उसका कोई कार्य कारण नहीं है। वह अपने स्वाभाविक ज्ञान, बल, क्रिया के द्वारा सम्पूर्ण कार्य को कर लेता है। सन्त तुलसीदास ने उक्त को इन शब्दों में प्रकट किया है—

बिनु पग चले, सुने बिनु काना। बिनु कर कर्म करे विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु वाणी वक्ता बड़ जोगी॥

इस प्रकार वह समस्त चराचर जगत् का अपने सामर्थ्य से तेजस्वी राजा है। वही स्तुत्य है, वही उपास्य है। **यः अस्य द्विपदश्चतुष्पदः ईशे**=जो इस मनुष्यादि और गौ आदि प्राणियों के शरीर की रचना करता है।

वह मात्र चराचर जगत् का स्वामी ही नहीं है अपितु संसार के सभी प्राणियों के शरीर की भी रचना वही अपने सामर्थ्य से करता है। प्रत्येक मानव को शरीर रचना के अद्भुत कौशल को देखना चाहिए। देखने के लिए नेत्र हैं तो विविध दृश्य भी हैं, सुनने के कान हैं तो अनेक श्रवणेन्द्रियों को तृप्त करने वाले उपकरण भी हैं, नाना सौन्दर्य भी हैं, स्वाद के लिए जिह्वा है तो—कटु, तिक्त, अम्ल, लवण, मधुरादि पदार्थ भी उपलब्ध हैं, सूंघने के लिए नासिका है तो विविध सुगन्धसंयुक्त पदार्थ भी है, स्पर्श के लिए त्वचा है तो मृदु, कोमल वस्तुओं का संयोजन भी है। इतना ही नहीं पदार्थों तक पहुंचने के लिए पैर हैं, ग्रहण करने के लिए, प्रयोग करने के लिए हाथ हैं, चिन्तन के लिए मन, निश्चय के लिए बुद्धि, जीवन के लिए प्राण आदि सभी शरीर को साधन प्राप्त हैं। इनमें से एक के अभाव की कल्पना कीजिये तो जीवन कैसा होगा अनुभव कीजिये।

आन्तरिक दृष्टि से शरीर की सुखद यात्रा के साधनों को देखिये, अन्न खाने के लिए मुख एवं दांतों का निर्माण (ये दांत मुख के सौन्दर्य को भी स्थित रखते हैं तथा साथ ही भोजन को पालन योग्य भी बनाते हैं, इसके अतिरिक्त वाणी को स्पष्ट, मधुर भी बनाने में सहायक हैं) भीतर स्थित पाचन यन्त्र, रक्त निर्माण, शोधन एवं शरीर में सर्वत्र व्याप्त करने का साधन, मल निष्कासन-साधन, रक्त, मज्जा अस्थि निर्माण यन्त्र, शरीर के लिए आवश्यक ओजादि का निर्माण यन्त्र आदि अद्भुत, नियमित तथा प्रत्येक मानव में एक सी प्रक्रिया वाले इन तत्त्वों का निर्माण क्या मानव द्वारा सम्भव है? नहीं, कदापि नहीं। ऐसा ही निर्माण पशु, पक्षी आदियों के शरीर की नियमित रचना क्या मानव द्वारा सुलभ है? वैज्ञानिकों के एक सम्मेलन में प्रसिद्ध वैज्ञानिक (सम्भवतः आइन्स्टीन) ने घोषणा करके कहा था कि—'आप सब अपने आविष्कारों पर अभिमान

न करें क्योंकि सारे संसार के वैज्ञानिक मिलकर भी सिर के एक बाल का भी निर्माण नहीं कर सकेंगे"। यह वैज्ञानिक घोषणा भी यही कहती है कि प्राणियों के अद्भुत शरीर की रचना परम-पिता परमात्मा की ही देन है। उसी ने इतने सुन्दर, सुखद, सर्वसाधन संयुक्त शरीर की रचना की है। अतएव वह उपास्य है।

स्वामी जगदीश्वरानन्द जी ने प्रार्थनाप्रकाश में क्या ही सुन्दर किसी शायर के ये वचन लिखे हैं—

कोई है दूसरा जो खाक के पुतले में जी डाले।
यह कुदरत[1] भी किसी को है कि सब मखलूक[2] को पाले।
कोई इन्सान दो सा-अत[3] तो अपनी नब्ज ठहरा ले।
इनाने-तोसने[4]-उम्रे-गुजिश्ता[5] फिर तो पलटा ले।
अदम[6] से ला नहीं सकता है इन्सां एक जर्रा भी।
बना सकता नहीं कोई बशर[7] छोटी-सी चिड़िया भी॥

इस प्रकार संसार के चराचर जगत् के स्वरूप का निर्माता वही है, वही ईश्वर है।

कस्मै देवाय=सुखस्वरूप, सकलैश्वर्य के देनेहारे परमात्मा के लिए।

'कस्मै' शब्द किम्=शब्द के चतुर्थी का एक वचन रूप होने से कतिपय लोगों के विचार में इसका अर्थ 'किस देवाय—देव के लिए' यह अर्थ उचित प्रतीत होता है। इसके लिए वे—

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् (ऋग्० १०।१२९।६)

कौन जान पाया है, कौन उसे कहेगा? यह प्रमाण देते हैं। यहां कः='कौन' यह प्रश्न-वाचक अर्थ सही होते हुए भी—'क' शब्द के अन्य अर्थ भी हैं। निरुक्त १०-२२ के अनुसार "कः सुखः" है, तो ऐतरेय ब्राह्मण के ३-२१ के वचनानुसार "**कः वै प्रजापतिः**" अर्थ है। छान्दोग्य उप-निषद् में—'कं ब्रह्म' कहकर 'कः' का, अर्थ स्पष्ट रूप से 'ब्रह्म' घोषित किया है! उक्त प्रमाणों के आधार पर महर्षि ने "कस्मै" शब्द का अर्थ सुख स्वरूप जो किया है वह उचित ही है।

इस असार संसार में जो उपलब्ध है, वह सब ईश्वरीय देन है, उसी की अनुकम्पा से यह सब प्राप्त है। ब्रह्माण्ड की समस्त दिव्य शक्तियां उसी ईश्वर की समस्त प्राणियों के कल्याणार्थ महान् देन है। संसार का समस्त ऐश्वर्य जो भी है, उसका दाता वही परमपिता परमात्मा है। ऐश्वर्य का दाता होने से ही वह ईश्वर कहलाता है। ईश-ऐश्वर्ये धातु से ही तो वह सकलैश्वर्य दाता है।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि संसार के समस्त ऐश्वर्य को देनेवाला वह परमपिता परमेश्वर ही है। हम जो थोड़ा बहुत सहयोग करते हैं, दान देते हैं, किसी दुःखी को भोजनादि खिलाते हैं, वहां हमारे अन्दर यही भाव होना चाहिए—'देनेवाला और है देता है दिन रैन।

१. शक्ति। २. सृष्टि। ३. घड़ी। ४. यौवनावस्था। ५. बीती हुई।
६. परलोक। ७. मनुष्य।

दाता तो वही है। वह सोचें तो आत्म उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा कि इसकी बड़ी कृपा है कि इसने मेरे सहयोग को, दान को, भोजनादि को स्वीकार किया है। क्योंकि मैं देनेवाला कौन हूं—सकलैश्वर्य का दाता तो एक मात्र वह परमपिता परमात्मा ही है। उसके समान दाता कोई नहीं है। यदि हम किसी को कुछ देते हैं तो महाभारत के अनुसार—

कः कस्य चोपकुरुते कश्च कस्मै प्रयच्छति।
प्राणी करोत्ययं कर्म सर्वमात्मार्थमात्मना॥

कौन किसका उपकार करता है, कौन किसे देता है? सब लोग अपने आत्महित के लिए ही ये कर्म करते हैं। आत्म उन्नति में सब से बाधक तत्त्व 'अहम्' ही है, मैं पन का भाव है। सन्त कबीरदास ने अत्यन्त सरल शब्दों में इस भाव को अभिव्यक्त किया है—

जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि है मैं नाही।
सारा अंधियारा मिट गया, दीपक रेखा माही॥

इस अहं भाव से बचने लिए यह भाव ग्रहण करना उत्तम है कि सकलैश्वर्य को देनेवाला वह परमात्मा ही है।

हविषा विधेम=अपनी सकल उत्तम सामग्री से विशेष भक्ति करें।

हविषा शब्द 'हु दानाऽदानयोः' धातु से बनता है, यह पहले भी लिख चुके हैं तदनुसार आदान=ग्रहण करना है संसार का ऐश्वर्य। यह ऐश्वर्य, यह संसार साधन है मोक्ष मार्ग का। संसार छोड़कर भागना नहीं है। संसार में रहना है, रहने के लिए साधन भी जुटाने हैं। ये साधन ही जब साध्य बन जाते हैं तब जीवन बन्धनमय बन जाता है, दुःखमय हो जाता है। वह राह भटक जाते हैं, हमारी दिशा भटक जाती है। किसी शायर के शब्दों में कह सकते हैं—

राही कहीं है, राह कहीं, राहवर कहीं।
ऐसे भी कामयाब हुआ है सफ़र कहीं॥

संसार की भौतिकता, मात्र भौतिकता ही व्यक्ति के लिए बन्धन का कारण है। इसीलिए गीताकार ने जीवन को यज्ञमय बनाने के लिए उपदेश दिया है—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥

यज्ञ के अतिरिक्त सम्पूर्ण कर्म बन्धन में डालने वाले होते हैं, तो फिर इस बन्धन से छूटने के लिए क्या किया जाये?

द्वितीय पंक्ति इसका निर्देश करती है 'तू संसार से छूटना चाहता है, बन्धन से बचना चाहता है तो 'तदर्थं कर्म समाचर' तदर्थं=यज्ञार्थं कर्म कर, समर्पण के भाव से प्रत्येक कर्म कर, भगवद् अर्पण के भाव से प्रत्येक कर्म कर तू—हे अर्जुन! तू बन्धन से छूट जायेगा। इस समर्पण भाव को जाग्रत करने के लिए बड़ा आवश्यक है कि "मुक्तसङ्गः' आसक्ति से रहित हो जा। आसक्ति युक्त जीवन ही तो बन्धन, दुःख का कारण हो जाता है। किसी संस्कृत कवि का वचन है—

आशायाः ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य ।
आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः ।।

आशा के, आसक्ति के, इच्छा के जो दास होते हैं, वे सारे संसार के दास हो जाते हैं। आशा पर जो नियन्त्रण कर लेते हैं, इच्छाओं पर जो विजय पा लेते हैं सारा संसार उनका दास हो जाता है। किसी अन्य ने इसी भाव को इन शब्दों में कहा है—

चाह मिटी चिन्ता गयी मनुवा बेपरवाह।
जिसे कछु न चाहिये वह शाहन के शाह ।।

अब प्रश्न है मन तो चंचल है अतः वह अपनी चञ्चलता के कारण गति करेगा ही आसक्ति में लगेगा, तो क्या करें ?

इसी को स्पष्ट करने के लिए, चञ्चल मन की वृत्ति को समझते हुए महर्षि ने भक्ति करने का, प्रभु भक्ति करने का निर्देश दिया है। यह समर्पण भाव से हो तो बन्धन का कारण नहीं बनेगा। अतः प्राप्त सकल ऐश्वर्य को लेकर, उसको साधन बना कर भक्ति करने का निर्देश महर्षि ने दिया है। सम्पूर्ण ऐश्वर्य तो उसका ही दिया हुआ है, वह प्रभु ही उसका दाता है फिर जिसकी वस्तु उसी को समर्पित करना सुखदायक होगा—

मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर ।।

यह मन्त्र हम ही राजा हैं, ऐश्वर्यशाली हैं, हमसे बढ़कर धनवान्, शक्तिशाली राजा कोई नहीं है इस अहं का विनाश करता है। वह परमेश्वर ही चराचर जगत् का अपनी महिमा से एक मात्र राजा है।

अगले लेख में क्रमप्राप्त अगले मन्त्र की व्याख्या करेंगे।

तेजस्वी परमेश्वर का गुणगान

[व्याख्याकार—डा० ब. द. धवन, चण्डीगढ़]

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ।। (ऋग्वेद १।१।१)

पदपाठ अग्निम् । ईडे । पुरःऽहितम् । यज्ञस्य । देवम् ।
ऋत्विजम् । होतारम् । रत्नऽधातमम् ।।

(यज्ञस्य पुरोहितम्) यज्ञ के पुरोहित अर्थात् सब यज्ञों में अग्रगण्य, (ऋत्विजम्) प्रेरक, (होतारम्) सम्पूर्ण सृष्टि का योग-क्षेम करने हारे, मुक्ति प्रदाता एवं सहर्ता, (रत्नधातमम्) ऐश्वर्य-दाता और सर्वश्रेष्ठ व्यक्तित्व वाले (अग्निम्) पाप-तापों को भस्म करने वाले (देवम्) ज्योति-स्वरूप परमात्मा की (ईडे) मैं स्तुति करता हूं।

उपर्युक्त मन्त्र में मन्त्रद्रष्टा ऋषि अग्नि-प्रभु की स्तुति करता है। वैदिक संहिताओं के अनुसार परमात्मा एक है और अग्नि उसके प्रमुख नामों में से एक है[1]। इस मूल तथ्य की पुष्टि वेदों के और भी मन्त्र करते हैं।[2] अतः युक्तियुक्त एवं सर्वथा उचित ही है कि ऋग्वेद की शुरुआत अग्नि नामक तेजस्वरूप परमात्मा की स्तुति से की गई है। ऋग्वेद की महिमा के विषय मे जर्मनी के संस्कृत विद्वान् प्रोफेसर मैक्समूलर ने अपनी 'प्राचीन संस्कृत साहित्य' नामक पुस्तक में लिखा है कि "संसार के इतिहास में वेद एक ऐसा अन्तराल भरता है जो किसी अन्य भाषा का कोई साहित्यिक कार्य नहीं भर सका। जब तक मनुष्य अपनी जाति में रुचि लेनी जारी रखता है और जब तक हम पुस्तकालयों और अजायबघरों में पुराने युगों के स्मृतिचिह्नों (अथवा अवशेषों) को एकत्र करते हैं, पुस्तकों की लम्बी पंक्ति में सर्वप्रथम स्थान सदा के लिए ऋग्वेद का होगा।"[3] (पृष्ठ ६५)

२ परमात्मा में अनन्त गुण हैं। उसका अग्नि नाम, उसकी ऊर्ध्वगतिशीलता, तेजस्विता पाप-तापों को भस्म करने की शक्ति इत्यादि का सूचक है। ऐसे अद्वितीय तेजपुञ्ज परमात्मा की स्तुति इस मन्त्र द्वारा की गई है। इसी अग्नि-प्रभु को प्रस्तुत मन्त्र में देव भी कहा गया है। व्युत्पत्ति शास्त्री (Etymologist) यास्क ने देव शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है कि वही देवता होता है। मोनियर विलियम के संस्कृत अंग्रेजी कोश के अनुसार देवता शब्द का अर्थ है god head अर्थात् परमात्मन्। अतः स्पष्ट है कि इस मन्त्र में अग्नि देव अर्थात् ज्योति-स्वरूप परमात्म-देव की स्तुति की गई है।

३. यज्ञस्य पुरोहितम्—

इसी देव के गुणों का वर्णन करते हुए उसको सर्वप्रथम यज्ञ का पुरोहित (यज्ञस्य पुरोहितम्) कहा गया है। यज्ञ शब्द का अर्थ प्रायः यजन अथवा हवन लिया जाता है। यज्ञ शब्द, यज् धातु से बनता है और इसका अर्थ है "देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु" अर्थात् "ईश्वर आराधना, शुभकार्य के लिये इकट्ठे होना एवं दान देना"। इस लिए यज्ञ का मुख्य अर्थ है ईश्वर पूजा अथवा लोक हित के लिए किया जानेवाला प्रत्येक महान् कार्य। यज्ञ के विषय में अद्वितीय वैदिक विद्वान् पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी लिखते हैं—

"यज्ञ का मूलार्थ है, कोई ऐसा कार्य जिसमें मनुष्यों वा वस्तुओं की सहकारिता आवश्यक है और जो उपयोगी परिणाम का देने वाला है। पर यूरोपियन विद्वान् इसे सदा ही बलि [सेक्रीफाईस] के अर्थ में लेते हैं। बलि का भाव एक विशुद्ध ईसाई भाव है और तत्त्वज्ञान में इसका कोई स्थान नहीं। यह आर्यावर्त्त के यथार्थ धर्म से बाहर है। अतः समस्त अनुवाद जिन में शब्द सेक्रीफाईस आता है, भ्रमजनक समझने चाहिए"।[4]

यज्ञ शब्द का उपर्युक्त अर्थ हर प्रकार से युक्तियुक्त एवं ठीक है। अतः प्रस्तुत मन्त्र में "यज्ञस्य पुरोहितम्" शब्दों का अर्थ हुआ कि वह परम-देव परमात्मन् प्रत्येक महान् एवं हितकारक कार्य में अग्रगण्य होते हैं—तभी तो सामवेद में कहा है—

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ (संख्या १६३ तथा ७४३)

अर्थात् (योगे योगे) प्रत्येक कार्य को शुरु करते समय और (वाजे वाजे) प्रत्येक आन्तरिक तथा बाह्य संग्राम अथवा संघर्ष आ पड़ने पर (तवस्तरम् इन्द्रम्) अत्यन्त शक्तिशाली परमात्मा का (सखाय) मित्रता एवं (ऊतये) रक्षा के लिए (हवामहे) हम आह्वान करें। अतः सुस्पष्ट है कि प्रत्येक महान् एवं महत्त्वपूर्ण कामों में प्रभु हमारे जीवनरूपी यज्ञ में पुरोहित अथवा सदैव अग्रगण्य होने चाहियें। यह वेद का एक नीति-निर्धारित वचन है।

४. ऋत्विजम्—

इसी मन्त्र में स्तुत्य भगवान् को ऋत्विज् कहा गया है। व्युत्पत्तिशास्त्रज्ञ यास्काचार्य ने ऋत्विक् को "ईरणः" अर्थात् प्रेरक कहा है। प्रायः ऋत्विक् का सम्बन्ध याग के साथ ही माना जाता है जैसे सिवाय पुरोहिताई के ऋत्विज् की किसी अन्यरूप में कल्पना ही नहीं की जा सकती। यास्काचार्य ने ऋत्विज् शब्द के जो अर्थ किए हैं, उन में सब से पहिला एवं मुख्य अर्थ प्रेरक (ईरणः) है। सृष्टि रचना रूपी यज्ञ का ऋत्विज् अथवा प्रेरक केवल परमात्मा ही था और उसकी बीजमात्र स्फुरण अथवा कामना से विश्वोत्पत्ति का कार्य आरम्भ हुआ। इस तथ्य की पुष्टि ऋग्वेद का निम्न मन्त्र करता है—

कामस्तदग्रे समवर्तताधि।

मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्॥ ऋ० १०।१२९।४॥

ऋग्वेद के उपर्युक्त मन्त्र से पहिले मन्त्र में लिखा है प्रलयकालीन शून्य अवस्था में केवल "एक" था जो अपने सहज अनन्त सामर्थ्य से प्रकट हुआ। (In that primeval state of emptiness or nothingness, ONE sprang into existence by dint of his own inherent might or greatness). उसके पश्चात्, सृष्टि रचना के पूर्व ही, उस "एक" के मन में इच्छा उत्पन्न हुई, वह (कामना ही) सृष्टि रचना का सर्वप्रथम बीज था।

अतः सिद्ध है कि परमपिता परमात्मा ही सृष्टि रचना रूपी यज्ञ का ऋत्विक् है। इसी प्रकार समस्त शुभकार्यों में सब साधु-जनों का वह प्रभु ऋत्विक् अथवा मूल प्रेरक है।

५. होतारम्—

होतृ शब्द हु धातु से बनता है और इस धातु का अर्थ है—दानादानयोः अर्थात् देना और लेना अथवा ग्रहण करना। परमात्मा समस्त जगत् का होता है। होता शब्द के निम्न अर्थ हैं—

१. सर्वजगते सर्वपदर्थानां दाता अर्थात् समस्त जगत् का योग और क्षेम करने वाला।

२. मोक्षसमये प्राप्तमोक्षाणाम् आदाता ग्रहीता वा अर्थात् मोक्षप्राप्ति के समय मोक्षप्राप्त करने वाले को ग्रहण करने वाला अथवा अपने में मिलान करने वाला।

३. वर्त्तमानप्रलययोः समये सर्वस्य जगतो ग्रहीता अथवा महाप्रलय के समय समस्त जगत् को अपने में विलीन करने अर्थात् लुप्त करने वाला।

परमपिता परमात्मा वास्तविक रूप में सम्पूर्ण सृष्टि का योग-क्षेम करने हारा, मुक्ति प्रदाता एवं स्वयं में समेटने वाला है। इसकी पुष्टि यजुर्वेद का निम्न मन्त्र करता है—

वेनस्तत् पश्यन् निहितं गुहासद्, यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं, स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ।। (३२।८)

(वेनः) विवेकी विद्वान् (तत्) उस चेतन ब्रह्म को, (यत्र विश्वम् एकनीडं भवति) जो समस्त जगत् का एकमात्र आश्रय है, (गुहा निहितं सत् पश्यत्) सदा अपने अन्दर किसी दुर्बोध गुफा में छिपा हुआ देखता है। (तस्मिन् इदं सर्वं सम् एति च) प्रलय काल के समय सब जगत् उस परमात्मा में विलीन हो जाता है और (वि एति च) सृष्टि रचना के समय, उसी से निकलता है। (सः) वह परमात्मा (प्रजासु) प्रकृति, जीव आदि सभी में (प्रोतः प्रोतः च) पट के ताने और बाने के समान (विभूः) व्यापक है।

६. **रत्नधातमम्**—

रत्न शब्द "रा" दानार्थक धातु से सम्पन्न होता है। रत्न शब्द के निम्न अर्थ हैं—

(क) बहुमूल्य और चमकीले पदार्थ विशेषतः खनिज पत्थर जिन्हें आभूषणों में जड़ते हैं।

(ख) अत्यन्त उत्कृष्ट वस्तु, व्यक्ति अथवा पदार्थ।

रत्न शब्द से "धा" धातु (जिसका अर्थ होता है धारण करना या पालन करना) का मेल होने से 'रत्नधा' विशेषण शब्द बनता है। 'रत्नधा' का अर्थ है धन को धारण अथवा बांटने वाला (Procuring wealth, distributing riches or precious things) जो अतिशय रूप में रत्नों को धारण करने वाला तथा देने वाला है, उसे "रत्नधातमः" कहते हैं (रमणीयानि पृथिव्यादीनि च रत्नानि दधाति धापयतीति रत्नधा, अतिशयेन रत्नधा इति रत्नधातमः)। अतः "रत्नधातमम्" शब्द का अर्थ हुआ रत्नों के अत्यधिक धारक अथवा दाता को। स्पष्ट है कि प्रस्तुत मन्त्र में अग्नि प्रभु अर्थात् सब पाप-तापों को भस्म करने वाले परमात्मा का पांचवां विशेषण है "रत्नधातमः"। ऐसे धन-दौलत, ऐश्वर्य, सम्पन्नता इत्यादि के सब बड़े धारक एवं दाता की मैं (ईडे) स्तुति करता हूं।

रत्न शब्द का उपर्युक्त दूसरा अर्थ है अत्यन्त उत्कृष्ट वस्तु, व्यक्ति अथवा पदार्थ। परमात्मा कोई वस्तु तथा कोई पदार्थ तो नहीं हैं। इसी प्रकार वह कोई व्यक्ति विशेष भी नहीं है, किन्तु उसका विशेष व्यक्तित्व तो अवश्य है ही और वह भी नाम रूप की परिधि से। बहुत परे इसकी पुष्टि वेदों तथा उपनिषदों के कई मन्त्र करते हैं। विस्तार के भय से यहां केवल दो ही मन्त्रों का उल्लेख किया जाता है।

(क) **महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्, धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् ।**
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा, स योधया च क्षयया च जनान् ।। (ऋ० ३।४६।२)

(हे महिष ! महान् असि) "हे पूजनीय परमात्मा ! तू महान् है।" (हे उग्र ! वृष्ण्येभिः धनस्पृत् सहमानः अन्यान्) "हे शक्तिशालिन् ! तुम अपनी वीरोचित ओजस्विता से शत्रुओं को पराजय करके उसके धन का अपहरण करो।" (एकः विश्वस्य भुवनस्य राजा] "तू सारे जगत् का एकमात्र राजा है।" (स त्वं योधय शत्रून्) "तुम शत्रुओं की पराजय करो।" (च क्षयय जनान्) "और भले व्यक्तियों को बसाओ।"

(ख) न तस्य कार्यं करण च विद्यते, न तत् समश्च अभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर् विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥ (श्वेता० ६।८)

"महान् सनातन आत्मा में कोई परिवर्तन नहीं होता, कार्य करने के लिए, उसे किसी साधन की आवश्यकता नहीं होती, न ही कोई उसके तुल्य और न ही कोई उससे वरिष्ठ दिखाई देता है। उसकी सर्वोच्च शक्ति विविध प्रकार की सुनी जाती है। ज्ञान (सर्वज्ञता) बल (सर्वशक्तिमत्ता) और कार्यशीलता अथवा चेष्टा उसके स्वाभाविक गुण हैं।

उपसंहार—

यह ऋग्वेद का पहला मन्त्र है। ऋग्वेद को "प्रार्थनाओं का ग्रन्थ" कहते हैं। इसमें प्रभु की स्तुति के लिए स्तोता के दृढ़ संकल्प को दर्शाया है। वेद में अग्नि परमात्मा के प्रमुख नामों म से एक है। यह शब्द उसके अत्यन्त तेज एवं उत्तमता [Transcendence] का द्योतक है। प्रस्तुत मन्त्र में भगवान् के पांच गुणों का उल्लेख किया गया है, जिनकी विस्तृत व्याख्या ऊपर अनुच्छेद सं० ३ से ६ में की गई है। अतः पुनरावृत्ति यहां नहीं की जाती। बस इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि जो मानव श्रद्धा, विश्वास के साथ और पवित्र भाव से उस परमात्मा का इस मन्त्र द्वारा गुणगान करता है, उसमें परमेश्वर के वही गुण उत्तरोत्तर प्रवेश करते चले जाते हैं और उसका जीवन सुख, शान्ति, समृद्धि एवं सद्गुणों से भरपूर हो जाता है।

सन्दर्भ (References)

१. इन्द्रं मित्रं वरुणम् अग्निम् आहुर्, अथो दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति, अग्नि यमं मातरिश्वानम् आहुः ॥ (ऋग्वेद १।१६४।४६)

उस परमात्मा को (इन्द्रं मित्रं वरुणम् आहुः) इन्द्र, मित्र, वरुण नामों से पुकारा जाता है, (अथो सः दिव्यः सुपर्णः गरुत्मान्) और वह दिव्य एवं (सुपर्णः) पालनहार महान् आत्मा है। (एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति) (सदा से) एक होते हुए भी, बुद्धिमान् लोग उसको बहुत से नामों से पुकारते हैं, (अग्निं यमं मातरिश्वानम् आहुः) उसी को अग्नि, यमराज तथा वायु कहते हैं।

तदेवाग्निस् तदादित्यस्, तद् वायुस् तदु चन्द्रमाः
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म, ता आपः स प्रजापतिः ॥ यजुर्वेद ३२।१॥

हे मनुष्यो ! (तत्) वह सर्वज्ञ ईश्वर (एव) ही (अग्निः) ज्ञानस्वरूप और प्रकाशमान होने से अग्नि है, (तत् आदित्यः) वह प्रलय काल में सब को अपने भीतर लय कर लेने वाला और सूर्य के समान तेजपूण होने से आदित्य है, (तत् वायुः) वह अनन्त बलवान् और सबका धारक होने से वायु है। (तत् चन्द्रमाः) वह आनन्दस्वरूप और आह्लादक होने से चन्द्रमा है, (तद एव शुक्रम्) वही शीघ्रकारी और शुद्धस्वभाव होने से शुक्र है, (तत् ब्रह्म) वह सबसे महान् होने से ब्रह्म है, (ताः आपः) वह सर्वत्र व्यापक होने से आपः है, (सः उ) और वह (प्रजापतिः) सब प्रजाओं का स्वामी होने से प्रजापति है, ऐसा तुम जानो।

3. Prof. F. Max Muller (a sanskrit scholar of Germany) writes as follows in his book entitled 'Ancient Sanskrit Literature :—

"In the history of the world, the Veda fills gap which no literary work in any other language could fill. As long as men continues to take an interest in the history of his race and as long as we collect in libraries and museums, the relics of the former ages, the first place in the long row of books will belong for ever to the Rig Veda." (page 65)

4. According to Pandit Guru Datta Vidyarthi, "The word yajna which indicates any action requiring association of men or objects and production of beneficial results is always translated by Europeon scholars as sacrifice. The notion of sacrifice is a purely christian notion and has no place in Vedic philosophy. It is foreign to the genuine religion of India. Hence, all translations in which the word 'sacrifice' occus are to he rejected as fallacious" (Foot note at page 32. of his book entitled 'The Works of Late Pt. Guru Datta).

द्वा सुपर्णा

[ले०—श्री वी० उपेन्द्रराव, ई ६/१५८, अरेरा कालोनी, भोपाल-४६२०१६]

[वेद प्रतीक-प्रधान काव्य है। प्रतीकों का अर्थ-अनुसन्धान सूक्ष्म दृष्टि, गम्भीर चिन्तन एवं प्रौढ-अनुभव माँगता है। 'द्वा सुपर्णा' मन्त्र की दो व्याख्याएं प्रायः प्रसिद्ध हैं—ईश्वर-जीव-प्रकृति परक तथा संसारी-केवली जीव परक। प्रस्तुत लेख में एक नवीन प्रतीक-अर्थ की ओर संकेत किया गया है, जो मननीय-रमणीय है। —सम्पादक]

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया०' मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १६४ वें सूक्त का २०वां है। इस सूक्त को 'अस्य वामीय' सूक्त भी कहा जाता है। इस सूक्त में विद्यमान ७२ मन्त्रों के अर्थ सामान्य दृष्टया असामान्य प्रतीत होते हैं। इसलिए इस सूक्त के मन्त्रों के अर्थ करने में अधिक परिश्रम एव अनुसन्धान तथा विचार करने की आवश्यकता है। अनेक विद्वानों ने प्रस्तुत मन्त्र के अर्थ को विभिन्न रूपों में किया है। परन्तु उन सबका दृष्टिकोण एक ही रहा है। किन्तु हम मन्त्रगत शब्दों में विद्यमान लक्षणों के आधार पर मन्त्रार्थ करने का यत्न करते हैं।

इस मन्त्र का सामान्य अर्थ (=रूढार्थ) इस प्रकार प्रतीत होता है—

(सयुजौ) दोनों परस्पर मिले हुए (सखायौ) मित्ररूप (सुपर्णौ) दो गरुड पक्षी (समानं वृक्षम्) एक समान विद्यमान वृक्ष का (परिषस्वजाते) आलिङ्गन किये हुए हैं।

(तयोः) उन दो में (अन्यः) एक (स्वादु पिप्पलम्) रुचिकर पीपल के फल को (अत्ति) खाता है। (अन्यः) दूसरा (अनश्नन्) न खाते हुए (अभि चाकशीति) चारों ओर देख रहा है।

इस सामान्य अर्थ में असामान्यता कुछ भी नहीं है। परन्तु यह जानना आवश्यक है कि इस प्रकार एक सामान्य दृश्य को प्रस्तुत करते हुए मन्त्र किस उद्देश्य की ओर इशारा कर रहा है।

यहां—'सुपर्ण', 'वृक्ष' एवं 'पिप्पल'—इन तीन शब्दों के अर्थ का अनुसन्धान करना चाहिए।

पहले 'सुपर्ण' शब्द का अर्थ खोजें। इसी सूक्त में यह शब्द—

सुपर्णा (१।१६४।२०); **सुपर्णाः** (१।१६४।२१,२२,४७); **सुपर्णः** (१।१६४।४६); तथा **सुपर्णम्** (१।१६४।५२)—

इन रूपों में प्रकट है। अर्थात् यह शब्द एकवचन-द्विवचन-बहुवचन में प्रयुक्त होने के कारण यह किसी विशिष्टार्थ का द्योतक न होकर सामान्य अर्थ का ही बोधक है। परन्तु अलङ्कार में दृष्टिगोचर होने के कारण अन्य अर्थों की ओर भी संकेत करता है।

'सुपर्णौ' शब्द का अर्थ है सुन्दर गतिवाले दो। ऐसी गतिवाले दो कौन हैं? इन्हें जानने के लिए इस शब्द के विशेषण एवं क्रिया को देखें।

सयुजौ=परस्पर मिले हुए।
सखायौ=समान बर्ताव एवं क्रिया से युक्त।[1]
परिषस्वजाते=दोनों आलिङ्गन करते हैं।
उपर्युक्त लक्षण स्वयंवृत पति-पत्नी में घटते हैं।
अब देखें 'वृक्ष' शब्द का अर्थ क्या है? क्या पेड़ है?

सभी विद्वान् 'ओव्रश्चू छेदने' धातु से वृक्ष शब्द की व्युत्पत्ति मानते हैं। परन्तु यह मानना ठीक नहीं है, क्योंकि वृक्ष का लक्षण बढ़ना है, न कि कटना। यह अलग बात है कि मनुष्य उसे काटता है। मनुष्य तो पशुओं को भी काटता है, मनुष्यों को भी काटता है।

इसलिए 'वृक्ष वरणे' धातु से 'वृक्ष' शब्द होना चाहिए।

पति-पत्नी वरण कर समानरूप से जिसका आलिङ्गन करते हैं, वह वृक्ष कौन-सा है? वह है उनकी सन्तान! बढ़ना ही सन्तान का लक्षण है। और गृहस्थाश्रम भी एक वृक्ष ही है।

अब 'पिप्पल' का क्या अर्थ है? क्या वह फल है?

वह स्वादु होने से दाम्पत्य सुख भोग, पारिवारिक सुखभोग, जगत् का सुखोपभोग इत्यादि हो सकता है।

अब इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार होगा—

---

१. समान गुण लक्षण-स्वभाव के आधार पर स्वयंवर के द्वारा विवाह किये हुए स्त्री-पुरुष 'सखायौ', 'सयुजौ', 'सुपर्णौ' होते हैं। इनका आलिंगन अर्थपूर्ण होता है। अन्य स्त्री-पुरुष परस्पर पालन के कारण पति-पत्नी मात्र होते हैं। उनका आलिंगन शारीरीक मांग की पूर्ति हेतु होता है।

(सखायौ) समान गुण-लक्षण-कर्म-स्वभाव वाले (सयुजौ) सदा साथ रहनेवाले (सुपर्णौ) सुन्दर गतिशील दो—युवा पति तथा युवती पत्नी (समानं वृक्षम्) अपनी ही सन्तान का अथवा अपने ही गृहाश्रम का (परिषस्वजाते) आलिङ्गन करते हैं।

(तयोः) उन दोनों में (अन्यः) एक (पति अथवा पत्नी) जब (स्वादु पिप्पलम्) रुचिकर सांसारिक भोग को (अत्ति) भोगता है अथवा भोगती है; तब (अन्यः) दूसरा (पत्नी अथवा पति) (अनश्नन्) न भोगते हुए (अभिचाकशीति) जाग्रत रहती है अथवा रहता है।

तात्पर्य—पति व पत्नी में जब एक सांसारिक सुखभोग करे, अर्थात् जगत् में व्यवहारशील हो, तब दूसरा जागरूक होकर उसकी, सन्तान की, अथवा गृहस्थी की रक्षा करे। एक साथ दोनों सुखोपभोग में मग्न हो जाएं, तो असावधानी के कारण सन्तान, गृहस्थी अथवा खुद की हानि की संभावना रहती है।

वर्तमान में नौकरीशुदा पति-पत्नी इस मन्त्र से सबक सीखें।

इस मन्त्र का देवता 'विश्वेदेवाः' होने से भी हमारा गार्हस्थ्यधर्मपरक अर्थ अनुचित नहीं है।

पर्यायों की तुलना द्वारा वेद का स्वाध्याय

[ले०—श्री मनोहर विद्यालङ्कार, खारी बावली, दिल्ली-६]

शरीर-विचार

वेद की दृष्टि में यह शरीर (पिण्ड) और जगत् (ब्रह्माण्ड) हेय नहीं, प्रेय हैं। इन दोनों में आत्मा की चेतना ने शोभा भर रक्खी है।

यह शरीर कमल की तरह शुभ्र सुगन्धित तथा सुन्दर है। इसलिये जीवन पर्यन्त इसे वैसा ही बनाए रखने का प्रयत्न करना चाहिये। वेद में उपमारूप में इसके लिए अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। उन शब्दों की छाया में हम देखते हैं कि वेद की दृष्टि में शरीर कैसा होना चाहिये, और उसे कैसा बनाकर रखना चाहिये।

१—शरीर+तनु—२

येन देवाः स्वरारुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम्। अथर्व० ४।११।६॥

यह शरीर जीवन का बन्धक है। जब तक शरीर रहता है, तब तक मनुष्य का जीवन माना जाता है। इस शरीर को छोड़ कर अपने कर्मानुसार स्वः=सुकृतस्य लोक (देवलोक) अथवा मनुष्य, पशु, पक्षी, जलचर या सरीसृप योनि (लोक) में जाते हैं।

तव शरीरं पतयिष्णु-अर्वन् चित्तं वात इव ध्रजीमान्। ऋक् १।१६३।११॥

अर्वन्—हे गतिशील मानव! ध्यान रखना कि तेरा यह शरीर अमृत का केन्द्र होते हुए भी क्षीण होने वाला है, और तेरा मन वायु की तरह चंचल है।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् । यजु० ४०।१५।।

प्राण, मन और अमृत का निवास होते हुए भी यह शरीर भस्मान्त=नश्वर है। अतः तेरा कर्त्तव्य है कि—**अनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्** । यजु० २।२४।।

शरीर में यदि कोई अङ्ग विकृत हो जाये, या कोई कमी आ जाए तो उस का अनुमार्जन करके उसे पुनः स्वस्थ बना ले।

अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण । यजु० ३।१७।।

शारीरिक विकार या न्यूनता का मुख्य कारण पाचन शक्ति में विकृति होती है। इसलिए जाठराग्नि से प्रार्थना की गई है तू सदा स्वयं ठीक रहकर, मेरे शरीर में आई कमी को पूरा कर दे।

स नः स्तिपा उत भवा तनूपाः अग्ने । ऋक् १०।६९।४।।

हे जाठराग्ने ! तू हमारे स्थूल शरीर का रक्षक बन और हे यज्ञाग्ने ! और ज्ञानाग्ने ! तू मन और बुद्धि की रक्षा द्वारा हमारे स्तिः=सूक्ष्म शरीर (स्त्ययो गृहाः—सूर्यकान्त) का रक्षक बन।

विश्वकर्मन्—स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः । ऋक् १०।८१।५।।

विश्वकर्मा से प्रार्थना के रूप में वेद संकेत करता है कि—हे मानव तू सब कुछ करने में समर्थ है, अतः अपने स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरों को स्वयं बढ़ा और उनमें सङ्गति स्थापित कर।

३—पूः=नगरी

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।
तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्माविवेशापराजिताम् ।। अथर्व० १०।२।३१-३२-३३।।

ऋषिः—नारायणः। देवता—पुरुषः, ब्रह्मप्रकाशनम्। छन्दः—अनुष्टुप्।

हे मानव ! तेरा यह शरीर-आठ चक्रों और नौ द्वारों वाली इन्द्रियों (देवों) की नगरी है। इसे इतना सुरक्षित रखना है कि इस पर कोई शत्रु आक्रमण ही न कर सके, पराजित करने की तो बात ही रहने दो। इस मनोहारी और रमणीय नगरी में हितकर और रमणीय कोश है, जो ज्योति से पूर्ण है, और आनन्द की ओर ले जाने वाला है—उसी कोश में।

४—उत्सः—स्रोत-झरना+रथ—५

अयं द्यावापृथिवी विष्कभायद् अयं रथमयुनक् सप्तरश्मिम्।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ।। ऋक् ६।४४।२४।।

यह शरीर दस इन्द्रियों (यन्त्र) वाला कूप या स्रोत है। इस सम्पूर्ण शरीर को इन्द्र या सोम ने धारण किया हुआ है। यह—सोम (वीर्य)—**सोमः समर्षसे कलशे शतयामना पथा** (अथर्व० १८।४।६०)—शरीर के कलशों में नानापथों से प्रविष्ट होता रहता है। यही द्यावापृथिवी=मस्तिष्क और शरीर को क्रियाशील बनाए रहता है। यह सोम (वीर्य) ही प्रकाशक सात किरणों वाले (५ ज्ञानेन्द्रियां+मन+बुद्धि) शरीर रथ को कर्मों में जोते रखता है, यह सोम अपने साजर्थ्य से इन्द्रियों

को परिपक्व बनाता है। यदि मानव सोम को ऊपर के कलश सहस्रार चक्र में ले जाकर ऊर्ध्वरेता बनता है, तो आनन्दमय सखा सोम से मिलता है, और यदि नीचे के कलश को स्वाधिष्ठान चक्र में ले जाकर पिता बनता है, तो चन्द्रसदृश आह्लादप्रद सुतों का सुख प्राप्त करता है।

शरीर—वृक्ष—६

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति, अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।। ऋक् १।१६४।२०।।

यह शरीर वृक्ष के समान है। इस पर पालन सामर्थ्य और योग-सामर्थ्य से युक्त दो सखा निवास करते हैं। उनमें से एक प्रायः स्वाद लेकर भोग भोगता है, और दूसरा अनासक्त रहता हुआ, केवल साक्षी बना रहता है, यदि दूसरा भी अनासक्त और साक्षी बन जाए तो वह अमृत और आनन्दमय हो सकता है।

शरीर—द्रोणकलश—७

प्रो द्रोणे हरयः कर्मग्मिन् पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन्। ऋक् ६।३७।२।।

हरयः—मनुष्य अथवा इन्द्रियां, द्रोणे=इस शरीर में रहते हुए, ऋज्यन्त—ऋजुगामी बन कर कर्म करते हैं, तो वे पवित्र होते हैं। द्रोणः द्रवतीति, उणादि ३-१०; देवपात्रं द्रोणकलशः। तां० ६।५।७।। मूर्धानं ते द्रोणकलशः पातु। मै० ४।८।७।। देवपात्रम्=इन्द्रियरक्षकम् पालकम्।

शरीर-अद्रिः=अश्मा (मेघ या पर्वत) ८,९

शरीर का आन्तर और बाह्य शत्रुओं से अहिंसित रहने के लिये पर्वत तुल्य दृढ़ और दूसरों के लिये मेघ सदृश सुखवर्षी होना आवश्यक है।

सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवत् यच्छरीरम्। अथर्व० ९।४।५।।

यदि शक्तिशाली जीव सोम(वीर्य)के भक्षण व रक्षण को चुनता है, तो उसका शरीर बृहद्-आकार पर्वत के समान दृढ़ और बृहद् मेघ के समान सुख वर्षी हो जाता है। और साथ ही नौ पंखड़ियों वाले कमल की तरह सुन्दर तथा आकर्षक हो जाता है।

पुण्डरीकं नवद्वारं—तद् वै ब्रह्मविदो विदुः। अथर्व० १०।८।४३।।

इस बात को ब्रह्मज्ञानी (ब्रह्म=परमात्मा, आत्मा, प्रकृति) जानते हैं।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।

मनु० २।२०।।

अर्थः—पृथिवी के सब लोग इस [भारत] देश में जन्मे ब्राह्मणों से अपने-अपने आचारों की शिक्षा लें।

श्रद्धाञ्जलि

[ले०—श्री शिवदत्त शर्मा, कैलाशपुरी, अजमेर]

तीस वर्ष तक अनवरत 'वेदवाणी' का सम्पादन कार्य करने के साथ-साथ वेदाङ्गों, व्याकरण एवं इतिहास ग्रन्थों की अद्वितीय मीमांसा करने वाले पं० युधिष्ठिर मीमांसक के नाम के आगे 'स्वर्गीय' शब्द बहुत अटपटा लग रहा है। वेदपथ पर पूर्ण संकल्प शक्ति से चलने वाले श्री पं० मीमांसक जी कई वर्षों से अस्वस्थ थे। रात्रिभर नींद नहीं आती थी। यद्यपि शरीर अति अशक्त हो गया था, किन्तु उनका लेखन कार्य धारा-प्रवाह चलता रहा। जीवन की अन्तिम महत्त्वपूर्ण कृति 'मेरी दृष्टि में स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके कार्य', उनके अथक परिश्रम की उपलब्धि है। पण्डित जी की कार्यसाधना की मुद्रा के विषय में श्री राजेन्द्र जिज्ञासु ने ठीक ही लिखा है कि—'मैं एक बार आपके दर्शन करने बहालगढ़ गया तो वे अपने तख्तपोश पर बकरी की भांति ऊंधे होकर लिखने-पढ़ने और शोध में डूबे हुए थे। मैं उनकी ज्ञान-साधना देखकर दङ्ग रह गया।' वस्तुतः मीमांसक जी इसी प्रकार बैठकर ३-४ घण्टे तक लिखते-पढ़ते रहते थे। उनका अध्ययन अत्यन्त गम्भीर एवं बहु-आयामी था।

पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक एक संस्कारी व्यक्ति थे। पूर्वजन्म के संचित संस्कारों के फलस्वरूप उन्होंने प्रारम्भ से ही ब्राह्मणोचित व्यवहार अपनाया था। गृहस्थ में प्रवेश करते ही उन्होंने तीन संकल्प किये थे—

प्रथमतः अध्ययन की इच्छा से आए किसी व्यक्ति को पढ़ाने से इन्कार न करना। इसी संकल्प की दृढ़ता के कारण उन्हें एक बार अपने पूज्य गुरुवर पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु का कोपभाजन भी बनना पड़ा किन्तु अन्त में उनके दृढ़ निश्चय के समक्ष आदरणीय गुरु जी भी नतमस्तक हो गए।

द्वितीय यह कि पढ़ाने के बदले द्रव्य (धनादि) न लेना अर्थात् ट्यूशन न करना। इस सङ्कल्प के कारण आर्थिक स्थिति के अत्यधिक कमजोर पड़ जाने पर उन्हें अनेक आर्थिक संघर्षों का सामना करना पड़ा किन्तु वे आजीवन अपने संकल्प से डिगे नहीं।

अन्तिम संकल्प था—किसी से दान न लेना। इस संकल्प के लिए मेरा एक व्यक्तिगत अनुभव है। मैं अपने पूज्य अग्रज श्रीयुत सुन्दरलाल जी 'अक्षर' के देहावसान के पश्चात् चन्द ऊनी वस्त्र लेकर उनकी सेवा में उपस्थित हुआ था जिन्हें उन्होंने श्रद्धावश ले तो लिया था, परन्तु जैसा कि बाद में पता चला कि उन्होंने वे सभी वस्त्र आगे दान में दे दिये थे।

मीमांसक जी में अहङ्कार लेशमात्र भी नहीं था। अपनी भूल का ज्ञान होने पर वे सदैव उसे स्वीकारने के लिए उद्यत रहते थे। यद्यपि अधिकतर अपनी भूलों का परिज्ञान उन्हें स्वयं ही हुआ किन्तु एक अवसर ऐसा भी आया जब किसी अन्य व्यक्ति ने भूल उजागर की। पण्डितजी ने बिना किसी ना-नुकुर के अपनी भूल स्वीकार की।

वे धर्मप्राण व्यक्ति थे। ईश्वर की न्याय व्यवस्था में उनका अटूट विश्वास था। वे मानते थे कि ईश्वर न्यायशील और दयालु है। ये दोनों गुण एक दूसरे के पूरक हैं। उनके पांव जन्म से

टेढ़े थे, जिसके कारण सान्ताक्रुज बम्बई तथा गुरुकुल कांगड़ी में उन्हें प्रवेश नहीं मिल सका था और अन्त में गुरुवर ब्रह्मदत्त 'जिज्ञासु' जी जैसा ऋषि भक्त एवं विद्याभ्यासी गुरु मिला। उनकी महती कृपा से वे कुछ बन पाए। उनका मानना था कि "यदि मेरे पैर टेढ़े न होते तो मुझे गुरुकुल सांताक्रुज या गुरुकुल कांगड़ी में प्रवेश मिल जाता और मुझे इतना लाभ नहीं मिल पाता। गुरुकुलों में तो व्याकरण ही नहीं पढ़ाया जाता।" ईश्वर की अनन्य कृपा एवं न्यायप्रिय प्रकृति में उनका ऐसा अटूट विश्वास था।

वे शास्त्रों के ज्ञाता एवं मीमांसादि ग्रन्थों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनकी विशिष्ट रचनाओं के लिए उन्हें सदैव स्मरण किया जायेगा। ऋषि दयानन्द के श्रेष्ठ ग्रन्थों की टीका एवं टिप्पणी सहित शुद्ध संस्करण, महर्षि के ग्रन्थों का इतिहास एवं पत्र और विज्ञापन, धातुपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ विषयक प्राचीन ग्रन्थ शाबर भाष्य का हिन्दी में प्रदीर्घ और ललित अनुवाद एवं तीन भागों में प्रकाशित संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास आदि उनका महत्त्वपूर्ण दाय है।

मीमांसक जी को उनके गहन अध्ययन, लेखन एवं पाण्डित्य के कारण अनेक संस्थाओं एवं शासनों द्वारा पुरस्कृत किया गया था। हिन्दी का सर्वोच्च विश्वभारती पुरस्कार उन्हें स्वर्गवास से एक माह पूर्व बहालगढ़ में ही प्रदान किया गया था। उन्होंने इन पुरस्कारों में प्राप्त धनराशि को अपने लिए उपयोग में न लाकर पुस्तक-प्रकाशन में ही लगा दिया था।

अपने जीवन की आशातीत सफलता का आधार वे गुरुजनों के आशीर्वाद, माता-पिता का प्रेम व अर्धाङ्गिनी श्रीमती यशोदा देवी के विशिष्ट सहयोग को मानते थे। उनका मानना था कि—"मैं ऐसे अनेक व्यक्तियों को जानता हूं जो मुझसे कहीं अधिक विद्वान् एवं साधन सम्पन्न रहे, परन्तु पत्नी की अनुकूलता न होने से जीवन में कुछ कार्य न कर सके।"

मीमांसक जी का मानना था कि देव दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलना छुरे की धार पर चलने के समान है। जो व्यक्ति श्मशान तुल्य वैराग्य के मार्ग पर भावुकता में आकर चलना आरम्भ करते हैं, वे कुछ ही दिनों में दृढ़निश्चय के अभाव में इस जीवनयात्रा के संघर्ष और प्रेम-मार्ग से भिन्न होकर या भ्रष्ट होकर निरुद्देश्य जीवन-यापन करते हैं। अतः देव दयानन्द के मार्ग पर उन्हें ही चलना चाहिये जो इस पथ की कठिनाई को समझकर अटल निर्णय लेकर चलें। यह साधारण बात नहीं है। कहना न होगा कि पूज्य मीमांसक जी ने न केवल कांटों भरे मार्ग पर चल कर दिखाया अपितु सभी के लिए मार्ग प्रशस्त भी किया। इसके लिए आने वाली पीढ़ियां उनकी अनुगृहीत रहेंगी।

अपने 'आत्म परिचय' में उन्होंने लिखा है—"भाग्य और पुरुषार्थ पर समान आस्था, पूर्व संचित फलोन्मुखी कर्म भाग्य कहाता है और जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रयत्न करना पुरुषार्थ कहाता है। ये जीवनरूपी गाड़ी के दो पहिए हैं। अतः भाग्य पर आस्था रखते हुए (उसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता) पुरुषार्थ से सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। भगवान् राम ने सीता से कहा था **'दैवसम्पादितो दोषो मानुषेण यथा जितः'** अर्थात् भाग्य दोष से तुम्हारा अपहरण हुआ उसे मैंने पुरुषार्थ से जीत लिया। वस्तुतः बिना पुरुषार्थ के भाग्य से प्राप्त भोगों को भी मनुष्य

यथावत् नहीं भोग सकता। अतः जो व्यक्ति केवल भाग्यवादी है अथवा पुरुषार्थ पर ही भरोसा करते हैं वे अपनी जीवन-यात्रा में लड़खड़ाते हैं।" मीमांसक जी की पुस्तक 'आत्म-परिचय' केवल उनके जीवन का लेखा-जोखा न होकर एक युग का दस्तावेज है। वेदवाणी के पाठकों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। इसे पढ़े बिना मीमांसकजी को समझना अधूरा रहेगा।

मीमांसक जी के निधन से हुए रिक्त स्थान की भरपाई तो नितान्त असम्भव है। उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि यही होगी कि उनके द्वारा किये जा रहे कार्यों को शिथिल न पड़ने दिया जाय वरन् उनका उत्तरोत्तर विकास किया जाय। बहालगढ़ में विरजानन्द आश्रम उनकी गति-विधियों का केन्द्र रहा है। प्रत्येक गतिविधि का सञ्चालन पूर्ववत् होता रहे। देव दयानन्द निर्दिष्ट विधि से अध्ययन-अध्यापन सुचारु रूप से होता रहे एवं वेदवाणी सदैव की भांति उत्तमोत्तम शोध-पूर्ण लेखों से पूर्ण प्रकाशित होती रहे। यह ज्ञानधारा मनुष्य को सात्त्विक कर्म की ओर प्रवृत्त करती रहे। यही सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी॥

श्री पं० भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर

[ले०—प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु' वेद सदन अबोहर—१५२११६]

[यह लेख अतिविलम्ब से प्राप्त हुआ। अतः पं० भगवद्दत्त संस्मरण-विशेषाङ्क में समाविष्ट न हो सका। इसका खेद है।—सम्पादक]

मैं एक मास घर से बाहर यात्रा पर रहा। अनुसन्धान का कुछ विशेष कार्य था। लौटा तो वेदवाणी को ध्यानपूर्वक न देख पाया। अभी-अभी गुरुकुल करतारपुर में स्वामी सम्पूर्णानन्द जी से पता चला कि वेदवाणी का पं० भगवद्दत्त स्मृति अङ्क आने वाला है। मैं समझता हूं—कि सभी लेखक उनके बारे में अपने-अपने प्रेरणाप्रद व रोचक संस्मरण लिखेंगे। फिर भी मैं यही कहना चाहूंगा कि उनके विषय में मेरे संस्मरण बहुत अनूठे व रोचक हैं। उनके निधन पर उर्दू आर्यगज़ट में मैंने अपने संस्मरण दिये थे जिन्हें पाठकों व विद्वानों ने बड़ा पसन्द किया था।

मेरे संस्मरणों की विशेषताओं में से एक यह है कि श्री पण्डित जी का अन्तिम भाषण आर्य समाज मन्दिर मार्ग में युवकों की एक सभा में सायंकाल के समय हुआ था, उस भाषण की Reporting मैंने की थी। मैंने किसी के कहने पर उनके भाषण को नोट नहीं किया था। न ही किसी पत्रिका के लिए नोट किया था। बल्कि अपनी रुचि से ऐसा किया था। क्या पता था कि यह उनका अन्तिम भाषण होगा। उनके निधन के पश्चात् मैंने एक पत्रिका में छपवा दिया था।

मैंने प्रथम बार पण्डितजी को सन् १९५२ के श्रावणी पर्व पर आर्यसमाज सीताराम बाजार में सुना था। चार दिन तक उनके व्याख्यान सुने और उनके एक भाषण के नोट भी अपनी कापी में ले लिए। १९५३ में श्री पं० भगवद्दत्तजी पंजाब विश्वविद्यालय की सीनेट की बैठक में भाग लेने के लिए जालन्धर में हमारे कालेज में आए। मैं तब बी० टी० कर रहा था। मैं पण्डितजी से मिला और भोजन का निमन्त्रण दिया। छात्रावास पास ही था। कुछ समय के पश्चात् मैं जब पण्डितजी

के पास गया तो दीवान आनन्द कुमार जी उपकुलपति ने उन्हें अपने साथ भोजन करने के लिए बहुत आग्रह किया। आपने मेरी ओर संकेत करके कहा 'यह हमारे आर्यवीर हैं। मैं इनका निमन्त्रण पहले स्वीकार कर चुका हूं'। बहुत कहने पर भी श्री पण्डितजी ने उनकी विनती अस्वीकार कर दी। वह कितने बड़े थे, इसका ज्वलन्त प्रमाण यह घटना है। आज तो धन, सत्ता व पदों की परिक्रमा के लिए पढ़े-लिखे लोग फिसलते हुए देर नहीं लगाते। स्मरण रहे दीवान आनन्द कुमार जी ऋषि-जीवन में चर्चित लाहौर के दीवान रत्नचन्द दाढ़ीवाला की सन्तान थे और पं० भगवद्दत्त जी के अनन्य भक्त थे।

जालन्धर में मैंने पण्डित जी के सामने अपनी कापी रखते हुए कहा; यह है देहली में आर्य-समाज बाजार सीताराम में आपके व्याख्यान के लिए गए नोट्स। इस पर पण्डितजी खिलखिला कर हंसे। थपकी दी और एक घटना सुनाई। कहा कि अच्छा हुआ आपने मुझे इस व्याख्यान की याद दिलवा दी अन्यथा मैं अभी सम्भव है यह प्रसङ्ग चलाता। आपने बताया एक बार प्रिंसिपल दीवानचन्द लाहौर से किसी उत्सव पर गये। मार्ग में कहीं गाड़ी बदली। किसी आर्य पुरुष ने उन्हें वहां देख लिया और उसी डिब्बे में आकर श्री ला० दीवानचन्द जी के पास बैठ गया। उसने कहा "मैं एक आर्यसमाजी हूं और उसी उत्सव पर जा रहा हूं जहां आप जा रहे हैं। मैंने अमुक स्थान पर आपका भाषण सुना था।" वह सारा भाषण उस भाई ने सुना दिया। श्री लाला दीवानचन्दजी ने अपना भाषण उसके मुख से सुनकर कहा, "अच्छा हुआ आप यहां मिल गए अन्यथा मैं आज भी यही भाषण देता।" आज भी यह घटना याद आती है तो अनायास ही मेरी हंसी छूट जाती है।

पं० जी ने तब मुझे कहा—"विद्या वही जो कण्ठ हो और पैसा वही जो गांठ में हो।"

एक बात यह कही कि रात को सोते हुए अपना पैन व कागज पास ही रखकर सोया करें। सोते हुए कोई बात स्वप्न में भी सूझे तो झट उठकर नोट कर लिया करें। अभ्यास करने से उठने का स्वभाव बन जायेगा। यह भी बताया कि मैं यात्रा में ट्रेन में सोते हुये भी ऐसा करता हूं। मुझे भी इससे विशेष लाभ हुआ है।

एक बार मैंने श्रद्धेय पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक से कहा कि बहुत से डिग्रीधारियों को मैंने बातें तो बहुत बनाते देखा है परन्तु उन्हें पुस्तक के अध्ययन की रीति भी नहीं आती। मैंने इस सम्बन्ध में पं० भगवद्दत्त जी से बहुत कुछ सीखा है। श्री मीमांसक जी झट से बोले—"मैंने भी पुस्तक पढ़ना उन्हीं से सीखा है।"

एक बार श्री विजयकुमार जी (सञ्चालक गोविन्दराम हासानन्द) से पं० भगवद्दत्त जी की चर्चा चल पड़ी तो विजय जी ने बताया कि पण्डितजी के मन में ऋषि-जीवन लिखने का विचार आया। आपने परोपकारिणी सभा से छः सौ रुपये मासिक का एक टाईपिस्ट माँगा। उक्त सभा यह व्यवस्था न कर पाई। यह घटना पं० जी ने विजयजी को सुनाई। अब पाठक स्वयं सोच लें कि इससे आर्यसमाज व मानव समाज की कितनी क्षति हुई। पण्डित जी के पास न जाने कितनी सामग्री थी। ऋषि जीवन पर जो कुछ वह जानते थे, वह उन्हीं के साथ चला गया।

मैं अपने संस्मरणों में जुड़ा हुआ एक पुराने आर्य का महत्त्वपूर्ण संस्मरण देने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। वैदिक धर्म उर्दू साप्ताहिक में स्वर्गीय सन्तरामजी अजमानी का "प्रोफेसर

राजेन्द्र जिज्ञासु जिन्दाबाद" शीर्षक से एक लेख छपा था। यह उन दिनों की बात है जबकि मैंने लेख पर लेख लिखकर प्रिंसिपल श्रीराम शर्मा की बोलती बन्द कर दी थी। वह ऋषि जीवन के बलिदान की घटना को झुठलाना चाहता था। मेरी पुस्तक **'महर्षि का विषपान—अमर बलिदान'** छपने पर शर्मा जी ठण्डे पड़ गए। तब अजमानी जी ने लिखा कि महर्षि जन्म शताब्दी की शोभायात्रा में राव राजा तेजसिंह, स्वामी श्रद्धानन्द जी, महात्मा नारायण स्वामीजी, महात्मा हंसराज जी आदि से कुछ बातें कर रहा था और पं० भगवद्दत्त गर्जना करते हुए कह रहे थे कि हम आर्यसमाज को बिकने न देंगे इत्यादि।

अजमानी जी ने पास जाकर सारी बात का पता लगाया तो पता चला कि राव राजा तेजसिंह जोधपुर के राज घराने का यह सन्देश लेकर वहां आये थे कि जोधपुर राज्य आर्यसमाज को पर्याप्त धन देगा यदि यहाँ शताब्दी पर आर्यसमाज यह घोषणा कर दे कि महर्षि को विष देने में या ऋषि की हत्या में जोधपुर के राजपरिवार का कोई दोष नहीं। श्री पं० भगवद्दत्त ने कहा, "राज परिवार भी उतना ही दोषी है जितना कि नन्ही भगतन, डा० अलीमर्दान, पाचक व अन्य लोग।" स्वामी श्रद्धानन्द जी, महात्मा नारायण स्वामी जी बिकाऊ माल नहीं थे। महात्मा हंसराज भी राव राजा के हत्थे न चढ़े। पं० भगवद्दत्त जी महर्षि की हत्या के षड्यन्त्र के बारे में बहुत कुछ जानते थे परन्तु उन्हें इस सम्बन्ध में लिखने का अवसर न मिला। अब फिर जोधपुर का राज परिवार अपने पैसे के बल पर ऋषि के बलिदान की घटना को झुठलाने पर तुला हुआ है परन्तु राव राजा तेजसिंह के हाथ का लिखा पत्र हमारे पास है कि ऋषि जी को जोधपुर में विष दिया गया। सर प्रतापसिंह ने स्वयं डा० दीवान चन्द जी से १८९८ में कहा था कि दुर्भाग्य से ऋषि को जोधपुर में विष दिया गया। मिर्जा गुलाम अहमद भी ऋषि की हत्या का कुछ श्रेय लेता है। उसने भी ऋषि की मृत्यु को हत्या ही माना है। शेष फिर कभी। ★

अन्तराष्ट्रिय वैदिक महाविद्यालय में प्रवेश प्रारम्भ

समस्त आर्यसमाज तथा गुरुकुलों को सूचित करते हुये अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि आर्यजगत् का एकमात्र शिक्षण केन्द्र पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक द्वारा प्रेरित अन्तराष्ट्रिय वैदिक महाविद्यालय[जो कि इन्टरनेशनल आर्यन फाउण्डेशन के सहयोग से चल रहा है] यहाँ पर पाणिनीय संस्कृत व्याकरण दर्शन,उपनिषद्,क्रियात्मक योग तथा अंग्रेजी के शिक्षण की निःशुल्क व्यवस्था है। साथही स्नातकों के भावी सामाजिक प्रचारार्थ देश-विदेश भेजने का कार्यक्रम भी संस्था ही निर्धारित करेगी।

आर्यबन्धु अपने पुत्रों को अथवा अपने समाजों की ओर से शीघ्र ही विद्यार्थियों को भेजकर इस स्वर्णावसर का लाभ उठावें।

विशेष—विद्यार्थी कक्षा दस उत्तीर्ण हो अथवा बुद्धिमान् हो। इस वर्ष आठ विद्यार्थी लिये जायेंगे। स्थान सीमित है, शीघ्र सम्पर्क करें। निवेदक—

अध्यक्ष	मन्त्री	कोषाध्यक्ष	आचार्य
श्री देवेन्द्र कपूर	कैप्टन देवरत्न आर्य	अवनीश कपूर	आदित्य, अनन्तांशु

सम्पर्क करें—अन्तराष्ट्रिय वैदिक महाविद्यालय, पद्मावती मार्ग, आलन्दी देवाची, ता. खेड, जि० पुणे—४१२१०५

एकोत्तर-शताब्दी-वर्षपूर्ति के उपलक्ष्य में—

पण्डित भगवद्दत्त बी० ए०

[ले०—पं० चन्द्रकान्त जी बाली शास्त्री, पीतमपुरा, दिल्ली]

[गतांक से आगे]

द्वितीय अनुशीलन : अप्रत्याशित उपलब्धि

महामान्य पण्डित भगवद्दत्त वैदिक वाङ्मय की रूपरेखा अंकित करते समय कुछ अप्रत्याशित उपलब्धियों का संकेत दे गए। यथा—

"पुराणों में वैवस्वत मनु से आरम्भ करके कृष्ण द्वैपायन तक प्रतिद्वापर की दृष्टि से २८ व्यास गिनाए हैं।"

"पुराणों के इस प्रसंग में 'द्वितीये द्वापरे' 'तृतीये द्वापरे' आदि कह कर 'परिवर्ते पुनः षष्ठे' 'पर्यायश्च चतुर्दश' आदि से गणना चलाई गई है।"

"इससे प्रतीत होता है कि वेद-प्रवचन विषयक गणना का अभिप्राय सर्वथा अन्य प्रकार का है।"

—वैदिक वाङ्मय का इतिहास : पृ० १६१।

वाह! पण्डित भगवद्दत्त वाह!! क्या खूब पहचाना! क्या अनोखी पकड़ है। परन्तु खेद है कि 'परिवर्तयुग' अपरनामा 'पर्याययुग' पर लक्षणा-बन्धन तथा गणना-चक्र स्थापित न करके वे स्वयं भी असमञ्जस में रहे।

'इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वायु की त्रेता की गणना एक विचित्र प्रकार की थी।"

"वायु का आद्यत्रेता स्वायंभुव अन्तर में और अन्तिमत्रेता २४वां था।"

—भा० बृ० इतिहास : प्रथमभाग; पृ० १५८।

औरों को भी दुविधा में डाल गए। लगता है—यह दुर्गम घाटी भी हमने ही पार करनी है। यथा—परिवर्त/पर्याययुग की परिभाषा :

'सम्पद्यते कृतं तेषु कलिशिष्टेषु वै तदा
यथा कृतस्य सन्तानः कलिपूर्वः स्मृतः बुधैः।" —ब्रह्माण्ड पुराण १।२।३५।१८२॥

अर्थात् कृतयुग का संतान [विस्तार] कलिपूर्व तक स्मरण किया जाता है। जैसा कि आगे चल कर बृहत्सारिणी में देखने वाले हैं—परिवर्तयुग अथवा पर्याययुग के लक्षणान्तर्गत गणना-चक्र भी देखते हैं और उसका रूपान्वय [ढांचा] भी सामने रखते हैं। यथा—

१. प्रथम परिवर्त—स्वयंभू व्यास

सौर वर्ष ३८, ८८, ०००]		[४, ३२, ००० कलिवर्जित
मनु संवत् ००	कृतयुग	ई० पूर्व १२, ०५, ३१, १०२
से [+]	त्रेतायुग	से [—]
३८, ८८, ००० तक	द्वापरयुग	११, ६६, ४३, १०२ ई० पू० तक।

अथ मीमांसा (४)

१. यहां से मानव सृष्टि आरम्भ होती है। आज मनुष्य को अस्तित्व में आए हुए १२, ०५, ३३, ०९५ अतीत [१९९४ ई० सन्] वर्ष हैं। इससे पूर्व 'देव सृष्टि' थी। जैसा कि यास्क का साक्ष्य है—"पूर्वं देवयुगमित्याख्यानम्।"

२. प्रसंगानुसार पं० भगवद्दत्त जी की डगमगाती मनःस्थिति भी अवलोकनीय है—"यदि वह प्रत्येक मन्वन्तर के ७४ चतुर्युगी गणना करता तो पहले छः [छह] मन्वन्तरों में ६×७४= ३०४ और सातवें वैवस्वत मनु में इस समय तक २८ अर्थात् स्वायंभुव मन्वन्तरस्थ, आद्य त्रेता से लेकर इस समय तक अथवा दाशरथि राम के समय तक ३३२ त्रेता हो तो। परन्तु तथ्य ऐसा नहीं है।" [प्रथम भाग, पृष्ठ १५८] पण्डित जी यह स्थिति समझने में अशक्त रहे; क्यों कि प्राग्-वैवस्वत मन्वन्तर का समय देवसृष्टि में आता है। देवसृष्टि में व्यास-परम्परा का अभाव है; कारण, देवसृष्टि का प्रत्येक घटक व्यास-जितनी बौद्धिक क्षमता रखता है।

३. अत्र स्वयंभू व्यास "शास्ता मनु" की श्रेणी में नहीं आता। वह व्यास-परम्परा का शिखामणि है। यह बात हमने भगवान् शंकराचार्य के संदर्भ—

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसापूर्वमनुज्ञाता स्वयंभुवा॥ वेदान्त

के बलबूते पर कही है। अत्र 'युगान्ते' का अर्थ पूर्व [देव] युगान्ते ग्रहण करना ही उपयुक्त है। प्रलय-अवारवर्ती देवयुग में व्यास-परम्परा का सर्वथा अभाव है।

४. पण्डित जी भा० बृ० इतिहास के प्रथम भाग के पृष्ठ १५९ पर लिखते हैं—

"अतः वायु के अनेक त्रेता एक त्रेता के अवान्तर भेद हैं।" पुनः आगे चलकर लिखते हैं। "यदि इन अवान्तर त्रेताओं की अवधि तथा आदियुग, देवयुग और त्रेतायुग आदि की अवधि जान ली जाय तो भारतीय इतिहास का सारा कालक्रम ठीक निश्चित हो सकता है।" हम दिवंगत पं० जी के प्रति निष्ठा का अवलम्बन ले कर यही लिखने का प्रयास कर रहे हैं। इति।

२. द्वितीय परिवर्तः प्रजापति व्यास

सौर वर्ष ३८, ८८, ०००]		[४, ३२, ००० कलिवर्जित
मनु संवत् ४३, २०, ०००	कृतयुग	ई० पू० ११, ६२, १९, १०२
से [+]	त्रेतायुग	[—] से
८२, ०८, ००० तक	द्वापरयुग	११, २३, २३, १०२ ई० पू० तक

३. तृतीय परिवर्त : उशना व्यास

सौर वर्ष ३८, ८८, ०००]		[४, ३२, ००० कलिवर्जित
मनु संवत् ८६, ४०, ०००	कृतयुग	ई० पू० ११, ११, ९१, १०२
से [+]	त्रेतायुग	[—] से
१, २५, २८, ००० तक	द्वापरयुग	१०, ८०, ०३, १०२ ई० पू० तक

४. चतुर्थ परिवर्त : बृहस्पति व्यास

सौर वर्ष ३८, ८८, ०००]		[४, ३२, ००० कलिवर्जित
मनु संवत् १, २९, ६०, ०००	कृतयुग	ई० पू० १०, ७५, ७१, १०२
से [+]	त्रेतायुग	[—] से
१, ६८, ४८, ००० तक	द्वापरयुग	१०, ३६, ८३, १०२ ई० पू० तक

५. पंचम परिवर्त : सविता व्यास

सौर वर्ष ३८, ८८, ०००]		[४, ३२, ००० कलिवर्जित
मनु संवत् १, ७२, ८०, ०००	कृतयुग	ई० पू० १०, ३२, ५१, १०२
से [+]	त्रेतायुग	[—] से
२, ११, ६८, ००० तक	द्वापर युग	९, ९३, ६३, १०२ ई० पू० तक

६. षष्ठ परिवर्त : मृत्यु व्यास

सौर वर्ष ३८, ८८, ०००]		[४, ३२, ००० कलिवर्जित
मनु संवत् २, १६, ००, ०००	कृतयुग	ई० पू० ९, ८९, ३१, १०२
से [+]	त्रेतायुग	[—] से
२, ५४, ८८, ००० तक	द्वापरयुग	९, ५०, ४३, १०२ ई० पू० तक

सप्तम परिवर्त : इन्द्र व्यास

सौर वर्ष ३८, ८८, ०००]		[४, ३२, ००० कलिवर्जित
मनु संवत् २, ५९, २०, ०००	कृतयुग	ई० पू० ९, ४६, ११, १०२
से [+]	त्रेतायुग	[—] से
२, ९८, ०८, ००० तक	द्वापरयुग	९, ०७, २३, १०२ ई० पू० तक।

अथ मीमांसा [५]

वायुपुराण ९८।७३ के कथनानुसार वामनावतार इसी युग में हुआ। यथा—बलि संस्थेषु लोकेषु त्रेतायाः सप्तमे युगे। दैत्यैः त्रैलोकमाक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत्॥ इसमें तृतीय वामनावतार का क्रमांक चिन्त्य है। इति

अष्टम परिवर्त : वसिष्ठ व्यास

सौर वर्ष ३८, ८८, ०००]		[४, ३२, ००० कलिवर्जित
मनु संवत् ३, ०२, ४०, ०००	कृतयुग	ई० पूर्व ९, ०२, ९१, १०२
से [+]	त्रेतायुग	[—] से
३, ४१, २८, ००० तक	द्वापरयुग	८, ६४, ०३, १०२ ई० पूर्व तक

[क्रमशः]

वेदपुरुषाः पं० भगवद्दत्त महाभागाः

पं० भगवद्दत्त-विशेषाङ्कमधिकृत्य यदिदं प्रकाशनं भवता विहितं पं० श्रीचन्द्रकान्तादि-विद्वद्भिः प्रेरितेन ते सर्वेऽपि विद्वांसो दीपोत्सवे धन्यवादार्हा अभिनन्द्यन्ते च।

अहमद्यत्वे प्रातःस्मरणीय पं० भगवद्दत्तविषये स्वस्मरणं लिखामि। एकस्मिन् दिने मया चिन्तितम् यत्तैर्जीवनान्तिमदिनेषु किं प्रणीतम्? न केनापि लेखकेन तस्मिन् विषये सङ्केतितम्। एकस्मिन् दिने मया तेषां विदुषी पुत्री सुनृता शास्त्री दूरभाषणेन पृष्टा तम् एव प्रश्नम्। न स्मर्यते, इति तया प्रत्युक्तम्। तदनन्तरं तेषां ग्रन्थलेखकप्रकाशकः सुपुत्रः सत्यश्रवा नामापि दूरभाषणेन भाषितः। तेन कथितम्—कालान्तरे विचार्य कथयिष्यामि। दिनद्वयानन्तरं तैर्मम गृहान् आगत्य एको ग्रन्थ उपहृतः, स च 'भारतवर्षका बृहद् इतिहास' (प्रथम भाग) इति नाम्ना जगत्प्रसिद्धः। अस्मिन् संस्करणे विषयप्रतिपादकपदसूची, प्राच्यविद्याविदां पाश्चात्यानां संस्कृतसाहित्याध्ययनस्य उद्देश्यं च इति द्वौ परिशिष्टौ स्तः। द्वितीयो लेखः पं० भगवद्दत्तमहाभागैर्हिन्दी-भाषायां लिखित आसीत्, यस्याङ्गलभाषायामनुवादः संस्कृतजगति विश्रुत प्रो० साधुराममहाभागैः कृतः। श्री सत्यश्रवा-महाभागैस्तस्मिन् दिने एतत् कथितम्—'मम पितृचरणाः जीवनान्तिमदिनेषु भारतवर्षस्य बृहद्-इतिहासस्य तृतीयभागस्य प्रकाशने व्यग्रा आसन्।

अयं विशेषाङ्को दीपावलीदिने मोदकप्रसादरूप इव जातः। यत्सत्यं वाचयित्वा सबाह्याभ्यन्तरं प्रासीदन् ममान्तरात्मा। आसायंकालं तत् सर्वं पठितम्। प्रादुरभूत् मम मनसि विचारः—पं० भगवद्दत्तमहाभागान् अधिकृत्य न कोऽपि अभिनन्दनग्रन्थः प्रकाशमागतः। वयं तेभ्यः शोधप्रचुरमितिहासज्ञानं धारयामः। एतद्विषयेऽस्माभिः संभूयाधुना प्रयत्नो विधेयः। तैर्यत्किञ्चित् लिखितं तत्सर्वं हिन्दीभाषायामेव अस्ति। एतत् सर्वं गर्वगौरवास्पदं वर्तते। अस्माकं शासकाः स्वपराधीनवृत्त्या हिन्दीभाषायाः साम्राज्यं वर्चस्वं च नैव स्वीकुर्वन्ति। भवतु, एतत्प्रतीपगमनेऽस्माभिः श्रमो विधेयः। स्थाने उक्तं नीतिकारैः—दन्तभङ्गोऽपि नागानां श्लाघ्यो गिरिविदारणे। पुनश्चसत्यापयिष्यति।

अतः श्रीमन्तो भवत्सहायाश्च नितरां प्रशस्याः। शुभं भूयात्—इति प्रार्थनया विरम्यते।

सीताराम: सहगलः, डब्ल्यू ४३, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली—२७

[विद्वद्वर पं० चन्द्रकान्त बाली (एन. डी./२३ पीतमपुरा-दिल्ली) लिखते हैं—'भगवद्दत्त स्मृति ग्रन्थ' के लिए समर्पित हूं। बाली-सहगल युगल कोई योजना बनाएं, तो रामलाल कपूर ट्रस्ट यथाशक्ति सहयोग करेगा—सम्पादक]

पुस्तक-समीक्षा

१—ईश्वर भक्ति विषयक व्याख्यान—लेखक—पं० गणपति शर्मा। **सम्पादक**—डा० भवानीलाल भारतीय। **प्रकाशक**—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली—११०००२। **मूल्य**—तीन रुपये पचास पैसे।

पं० गणपति शर्मा (सन् १८७३-१९१२) आर्यसमाज के 'तार्किक' शास्त्रार्थ महारथी एवं कुशल वक्ता विद्वान् थे। उनका निधन ३९ वर्ष की अल्प आयु में हो गया था। उन्होंने सन् १८९८ में प्रस्तुत व्याख्यान के विज्ञापन में इसी प्रकार के अन्य ९९ व्याख्यान छापने की सूचना दी थी। परन्तु शास्त्रार्थों, उपदेशों और व्याख्यानों में अत्यन्त व्यस्त रहने के कारण उनका लेखन कार्य अधिक प्रगति न कर सका। प्रस्तुत पुस्तिका के आरम्भ में सम्पादक ने 'पं० गणपति शर्मा के व्यक्तित्व और कार्य' पर विशद प्रकाश डाला है। पुस्तिका उपदेश शैली में लिखी गई है। लेखक ने विषय के निरूपण में तर्कों, युक्तियों एवं प्रमाणों का भरपूर उपयोग किया है। पुस्तक पठनीय एवं मननीय है। इसका अधिक से अधिक प्रचार होना चाहिये।

२—अनाघ्रातं पुष्पम्—लेखक—डा० प्रशस्यमित्र शास्त्री। **प्रकाशक**—स्वामी सत्यप्रकाश प्रतिष्ठान, आर्यसमाज बरेली (उ० प्र०)—२२९००१। **कागज-छपाई-सज्जा**—उत्तम। **मूल्य**—चालीस रुपये मात्र।

डा० प्रशस्यमित्र शास्त्री जाने-माने संस्कृत के हास-व्यङ्ग्य-लेखक हैं, संस्कृत कवि सम्मेलन इन के बिना फीके लगते हैं। संस्कृत पत्रिकाओं में प्रायः शास्त्री जी की रचनायें प्रकाशित होती रहती हैं। प्रस्तुत पुस्तक श्री शास्त्री जी की एक दर्जन कहानियों का संकलन है। गद्य को कवि की कसौटी कहा जाता है। तदनुसार प्रस्तुत कथाकार खरे उतरते हैं। चरित्रों (पात्रों) के मनोभावों को परत-दर-परत उकेरने में कवि का सरल-सहज गद्य सर्वथा समर्थ है। औचित्य-निर्वाह के लिए वे सदा सजग रहते हैं। उदाहरणार्थ—सीतया रावणो हतः' में पहले 'भ्रातृजाया' और फिर 'मित्र' के मनोभावों से यह सुव्यक्त है। 'अनाघ्रातं पुष्पम्' में भी इसे स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है। आशा है, प्रस्तुत संकलन संस्कृत साहित्य की समृद्धि में यथेष्ट योगदान करेगा। कहीं-कहीं अपशब्द प्रयुक्त हो जाने पर भी प्रवाह भङ्ग नहीं होता। मुद्रण-दोष अवश्य खिन्नता उत्पन्न करते हैं। कुल मिलाकर संकलन रमणीय है।

नये प्रकाशन उपलब्ध

१. **विदुर-नीति**—हिन्दी पदार्थ एवं व्याख्या सहित मूल्य ६०.००

२. **जगद्गुरु दयानन्द का संसार पर जादू**—महर्षि की महत्ता व उद्देश्यों का विवरण ३.००

३. **मनुष्यमात्र का परममित्र स्वायंभुव मनु**—मानवता को मनु की देन ५.००

४. **पाश्चात्त्य भारतविद् : उद्देश्यों का अध्ययन**—वास्तविक उद्देश्यों का उद्घाटन ५.००

५. **सत्यार्थ भास्कर (दूसरा भाग)**—यह अद्भुत पुस्तक सीमित संख्या में छपी थी। अतः शीघ्र समाप्त हो गई थी। अब इसका पुनः मुद्रण हो गया है। अतः सुलभ हो गई है।

—विपाश

समाचार-संग्रह

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति दिवंगत

गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय हरद्वार के पूर्व आचार्य एवं कुलपति श्री प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति ५ नवम्बर १९९४ को हृदयगति के रुक जाने से ९५ वर्ष की परिपक्व आयु में दिवंगत हो गये। स्वर्गीय आचार्य जी का जन्म हरियाणा के पानीपत जिले में किसान परिवार में हुआ था। वे गुरुकुल काङ्गड़ी के प्रथम स्नातकों में से थे। वे अनेक वर्ष तक गुरुकुल के आचार्य रहे थे और विश्वविद्यालय बन जाने पर कुलपति पद से अवकाश प्राप्त हुए थे। वे बहुत मिलनसार और समाज के प्रति समर्पित व्यक्ति थे। वे वेद के उच्चकोटि के विद्वान और कुशल वक्ता थे। उन्होंने अनेक पुस्तकों का प्रणयन किया था। प्रभु दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करे।

संस्कृत प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न

प्राच्य विद्यानुसन्धान केन्द्र दिल्ली द्वारा बदायूं (उत्तर प्रदेश) में १५ से ३० अक्तूबर १९९४ तक संस्कृत प्रशिक्षण शिविर का सफलता पूर्वक आयोजन किया गया। केन्द्र के महानिदेशक डा० धर्मवीर विद्यावारिधि ने तीस शिविरार्थी छात्रों को प्रारम्भिक संस्कृत के प्रशिक्षण के साथ-साथ चरित्र-निर्माण पर विशेष बल दिया। ३० अक्तूबर १९९४ को समापन-समारोह की अध्यक्षता पं० विशुद्धानन्द जी शास्त्री ने की। छात्रों को प्रथम-द्वितीय पुरस्कार दिये गये। वैदिक मानवोत्थान समिति का गठन किया गया जो वैदिक संस्कृति के संरक्षणार्थ कार्य करेगी। अनेक लोगों ने धूम्रपान आदि व्यसनों के परित्याग का व्रत लिया।

अजमेर में ऋषिमेला

११ से १३ नवम्बर १९९४ तक अजमेर के ऋषि उद्यान में गतवर्षों के समान ऋषिमेले का आयोजन परोपकारिणी सभा की ओर से किया गया। स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती के ब्रह्मत्व में ऋग्वेद पारायण यज्ञ हुआ। ११ नवम्वर को वादविवाद प्रतियोगिता, गोरक्षा-मद्यनिषेध सम्मेलन और श्री प्रियव्रत दास (उड़ीसा) का सम्मान हुआ। १२ नवम्बर को वेद सम्मेलन हुआ जिस में 'सोम का वैदिक स्वरूप' विषय में प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा पत्र-वाचन किया गया। १३ नवम्बर को संस्कृत व संस्कृति रक्षा सम्मेलन हुआ जिस में मुख्य अतिथि भारत सरकार की उपमन्त्री कुमारी शैलजा थीं।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा हरियाणा का शताब्दी समारोह

२९, ३० अक्तूबर १९९४ को आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा हरियाणा की ओर से फरीदाबाद में शताब्दी समारोह का आयोजन किया। २९ अक्तूबर को विशाल शोभा यात्रा प्रमुख बाजारों से होकर निकली। जिस में डी० ए० वी० पब्लिक स्कूल के छात्र-छात्राओं और विभिन्न संस्थाओं ने उत्साह पूर्वक भाग लिया। ३० अक्तूबर को आर्य महासम्मेलन का आयोजन हुआ जिस की अध्यक्षता प्रादेशिक सभा प्रधान श्री दरबारी लाल ने की और हरियाणा के मुख्यमन्त्री श्री भजनलाल मुख्य अतिथि थे। सम्मेलन में लोगों के ठहरने और भोजन का प्रबन्ध उपसभा हरियाणा ने किया था।

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित और प्रसारित ग्रन्थ

वेद-विषयक ग्रन्थ

१. ऋग्वेदभाष्य—भाग I (ऋ०भा०भू० सहित) ५०-००; II ४०-००; III ५०-००

२. ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका—यु० मी० सम्पादित सटिप्पण। बढ़िया ४०-००, साधारण ३५-००

३. भूमिका-भास्कर—स्वा० विद्यानन्द सरस्वती। दो भागों में, प्रति भाग १५०-००

४. ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका-परिशिष्ट— ५-००

५. ऋग्वेदानुक्रमणी—वेङ्कटमाधवकृत, व्याख्याकार पं० विजयपाल जी। ४०-००; राजसं० ५०-००

६. कात्यायनीय ऋक्सर्वानुक्रमणी—षड्गुरुशिष्य विरचित संस्कृत टीका सहित १२५-००

७. ऋग्वेद की ऋक्संख्या—यु० मी० ५-००

८. ऋग्वेद-परिचय—पं० विश्वनाथ २५-००

९. यजुर्वेदभाष्य-विवरण—भाग I १४०-००; भाग II ६०-००

१०. माध्यन्दिनपदपाठः—(यजुर्वेद पदपाठ) ६०-००

११. तैत्तिरीय-संहिता-(मूल) मन्त्रसूचीसहित ६०-००

१२. तैत्तिरीय-संहिता-पदपाठः—सजिल्द १२५-००

१३. अथर्ववेदभाष्य—पं० विश्वनाथ वेदोपाध्याय १-३ काण्ड ५०-००;
४-५ काण्ड ५०-००; ६ काण्ड ४०-००,
७-८ काण्ड ४०-००, ९-१० काण्ड ४०-००;
११-१३काण्ड ३५-००; १४-१७काण्ड ३०-००;
१८-१९ काण्ड २५-००; २० काण्ड २५-००।

१४. (क) गोपथ-ब्राह्मण (मूल) ६०-००

१४.(ख) वैदिक-निघण्टु-संग्रह—धर्मवीर १०-००

१५. वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा—यु० मी० लिखित वेदविषयक १७ निबन्धों का संग्रह। प्रथम भाग ७५-००; द्वितीय भाग १००-००

१६. वैदिक-साहित्य-सौदामिनी—सजिल्द ६०-००

१७. वेदश्रुतिआम्नायसंज्ञा-मीमांसा—यु०मी० ३-००

१८. वैदिक-छन्दोमीमांसा— ,, ,, ३०-००

१९. वैदिक-स्वर-मीमांसा— ,, ,, ३५-००

२०. वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त विविध स्वराङ्कन-प्रकार—युधिष्ठिर मीमांसक ८-००

२१. वेदों का महत्त्व तथा उनके प्रचार के उपाय—युधिष्ठिर मीमांसक १५-००

२२. देवापि और शन्तनु के वैदिक आख्यान का वास्तविक स्वरूप—ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ३-००

२३. वेद और निरुक्त— ,, ,, ३-००

२४ निरुक्तकार और वेद में इतिहास—,, ३-००

२५. त्वाष्ट्री-सरण्यू के आख्यान का वास्तविक स्वरूप—पं० धर्मदेव जी निरुक्ताचार्य ३-००

२६. वैदिक-जीवन—पं० विश्वनाथ। स० २०-००

२७. वैदिक-गृहस्थाश्रम—,, ,, सजिल्द ४०-००

२८. वैदिक-पीयूष-धारा—श्री देवेन्द्र कुमार कपूर। अजिल्द १०-००, बढ़िया जिल्द १५-००

२९. क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है? पं० रामगोपाल शास्त्री १२-००

३०. उरु-ज्योति—वासुदेवशरण अग्रवाल २०-००

३१. वेदों की प्रामाणिकता—श्रीनिवासजी ४ ००

३२. Anthology of Vedic Hymns—स्वामी भूमानन्द सरस्वती ६०-००

कर्मकाण्ड-विषयक ग्रन्थ

३३ बौधायन-श्रौत-सूत्रम्—(दर्शपूर्णमास) ५०-००

३४. बौधायन-श्रौतसूत्रम् (संस्कृत)—आधान प्रकरण की व्याख्या एवं पद्धति सहित ५०-००

३५. दर्शपूर्णमास-पद्धति—पं० भीमसेन ३०-००

३६. कात्यायन-गृह्यसूत्रम्—(मूल) २५-००

३७. श्रौतपदार्थ-निर्वचनम्—(संस्कृत) ४०-००

३८. श्रौतयज्ञ-मीमांसा—(संस्कृत-हिन्दी) ३०-००

३९. अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त श्रौतयज्ञों का संक्षिप्त परिचय— २०-००

४०. यजुर्वेद का स्वाध्याय तथा पशुयज्ञ समीक्षा—सजिल्द २०-००; बढ़िया जिल्द २५-००

४१. शतपथ ब्राह्मणस्थ अग्निचयन समीक्षा—पं० विश्वनाथ वेदोपाध्याय ४५-००

४२. संस्कार-विधि–१२-००, बढ़िया जिल्द १६-००
आर्य-समाज-शताब्दी सस्करण–विविध सूचियों सहित सजिल्द ५०-००
४३ संस्कारविधि-मण्डनम् –रामगोपाल १६-००
४४ वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश –पं० बाला जी विठ्ठल गांवस्कर कृत मराठी का हिन्दी अनु० २५-००
४५. वैदिक-नित्यकर्म-विधि—(पञ्च महायज्ञ के मन्त्रों की पदार्थ व भावार्थ व्याख्या) १२-००
४६. वैदिक-नित्यकर्म-विधि—(मूलमात्र) २-००
४७ पञ्चमहायज्ञविधि—ऋ० द० कृत ३-००
४८. सन्ध्योपासन-अग्निहोत्रविधि—(हिन्दी-अंग्रेजी व्याख्या सहित) डा० विजयपाल १२-००
४९ वैदिकयज्ञों का स्वरूप–डा०कृष्णलाल १०-००

शिक्षा-निरुक्त-व्याकरण-छन्दःशास्त्र-ज्योतिष विषयक ग्रन्थ

५० वर्णोच्चारण-शिक्षा—ऋषि दयानन्द २-००
५१. शिक्षासूत्राणि–आपिशल-पाणिनीय-चान्द्र८-००
५२. शिक्षा-शास्त्रम्—जगदीशाचार्य १५-००
५३ शिक्षा महाभाष्यम्— ,, सजिल्द १५-००
५४. वृद्धशिक्षा-शास्त्रम्— ,, सजिल्द ३०-००
अरबी-शिक्षाशास्त्रम्—,, १५-००
५५. हमारी वर्णमाला—(हिन्दी),, ५-००
५६. निरुक्त-श्लोकवार्त्तिकम् –नीलकण्ठ १२५-००
५७ निरुक्त-समुच्चय—वररुचि कृत २०-००
५८. अष्टाध्यायीसूत्रपाठः—शुद्ध संस्करण ६-००
५९. अष्टाध्यायी-भाष्य—(संस्कृत तथा हिन्दी) भाग I ६०-००; II ४०-००; III ५०-००
६०. भागवत्तिसंकलनम्—अष्टाध्यायी-वृत्ति १०-००
६१. महाभाष्य यु०मी०कृत हिन्दी व्याख्या सहित भाग। प्रथम खण्ड ६५-००, द्वितीय खण्ड ६०-००; II ५०-००; III ७५-००
६२ माहेश्वरव्याकरणम्–जगदीशाचार्य । ३०-००
काशिका-महापरिष्कारः ,, सम्पूर्ण २००-००
६३ धातुपाठः—(धातु सूची सहित) ५-००
६४ क्षीरतरङ्गिणी—(धातुपाठ-व्याख्या) ७०-००
६५. धातुप्रदीप– धातुपाठवृत्ति, मैत्रेयरक्षित ५०-००
६६. संस्कृत-धातु-कोष—यु० मी० २०-००
६७. काशकृत्स्न-व्याकरणम् २०-००
६८. काशकृत्स्न-धातुव्याख्यानम्— ५०-००
६९. संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि-भाग I २५-००; II २५-००
प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद ३०-००
७०. उणादिकोष-ऋ०द०। अ०२०-००,स०२५-००
७१. दशपाद्युणादिवृत्ति-संग्रह-प्रथम भाग (माणिक्यदेवविरचित अतिप्राचीन वृत्ति, अनेक परिशिष्टों के साथ) सं०—यु० मी०, चन्द्रदत्त शर्मा ५०-००; द्वितीय भाग में तीन प्राचीन वृत्तियों का संग्रह। सं०–चन्द्रदत्तशर्मा ५०-००
७२. गणरत्नावली—भट्टयज्ञेश्वर कृत पाणिनीय गणपाठ की व्याख्या। सं०-चन्द्रदत्तशर्मा ६५-००
७३ वामनीयं लङ्गानुशासनम्— १०-००
७४. दैवम् पुरुषकार-वार्त्तिकोपेतम्— १५-००
७५ अष्टाध्यायीशुक्लयजुःप्रातिशाख्ययोर्मतविमर्शः —डा० विजयपाल विद्याविरिधि ५०-००
७६. शब्दरूपावली – विना रटे स्मरण योग्य ५-००
७७. यजुर्वेद-भाष्य-संग्रह तथा अपाणिनीय-पद-विमर्श—अजिल्द १२-००, सजिल्द १५-००
७८. पिङ्गलनागछन्दोविचिति-भाष्यम्——यादव-प्रकाशविरचित भाष्य ५०-००
७९. सूर्य-सिद्धान्त—उदयनारायण सिंह ६०-००

अध्यात्म-विषयक ग्रन्थ

८०. ईश-केन-कठ-उपनिषद्–हिन्दी-अंग्रेजी। रामगोपाल वैद्य। क्रमशः २-००; २-००; ४-००
८१. गीता-भाष्यम्—तुलसीराम स्वामी २५-००
८२ तत्त्वमसि—स्वा० विद्यानन्द सरस्वती। अद्वैत-द्वैत-त्रैतवाद विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ४०-००
८३. प्रपञ्च-हृदयम् तथा प्रस्थान-भेदः (संस्कृत) प्रथम अज्ञातकर्तृक है (इसमें वैदिक वाङ्मय के अनेक अनुल्लिखित ग्रन्थों का वर्णन है) मधुसूदन सरस्वतीकृत द्वितीयग्रन्थ में दार्शनिक मतों का वर्णन है २५-००

८४. ध्यानयोग-प्रकाश—स्वा० लक्ष्मणानन्द २५-००
८५. पुरुषार्थ-प्रकाश—लेखक—स्वा० विश्वेश्वरानन्द ब्र० नित्यानन्द ३०-००
८६. अनासक्तियोग-मोक्ष की जगदण्डी ४०-००
८७. आर्याभिविनय—ऋ० द० । सजिल्द १०-००
८८. Aryabhivinaya-English translation and notes स्वा० भूमानन्द, सजिल्द १० ००
८९. वैदिक ईश्वरोपासना—ऋ० द० ३-००
९०. विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रम्—चारों भाग २००-००
९१. अगम्य पन्थ के यात्री को आत्मदर्शन—१०-००
९२. मानवता की ओर—शान्तिस्वरूप कपूर ८-००

नीतिशास्त्र-इतिहास-विषयक ग्रन्थ

९३. वाल्मीकि-रामायण—(हिन्दी अनुवाद सहित) युद्ध काण्ड २०-००; सुन्दर काण्ड २५-००
९४. शुक्रनीतिसार—स्वा० जगदीश्वरानन्द ६०-००
९५. विदुर-नीति—यु० मी० कृत व्याख्या ६०-००
९६. सत्याग्रहनीतिकाव्य-भाषानुवाद सहित ३०-००
९७. ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास— ४०-००
९८. संस्कृत-व्याकरणशास्त्र का इतिहास—यु० मी० (नया सं०१५०पृष्ठ बढ़े हैं)तीनोंभाग १५०-००
९९. विरजानन्द-प्रकाश—भीमसेन शास्त्री ८-००
१००. ऋषि दयानन्द सरस्वती का स्वलिखित और स्वकथित आत्म-चरित—पं०भगवद्दत्त ३-००

दर्शन-आयुर्वेद-विषयक ग्रन्थ

१०१. मीमांसा-शाबर-भाष्यम्—(मूल) आरम्भ में शास्त्रावतार वेद-श्रुति-आम्नाय-संज्ञा मीमांसा, और श्रौतयज्ञ-मीमांसा (संस्कृत) सहित । प्रथम भाग (३ अध्याय) ६०-००
१०२. मीमांसा-शाबर-भाष्य—यु० मी० कृत आर्ष-मत विमर्शिनी हिन्दी व्याख्या सहित । भाग १ से ७ तक ५०-०० रु० प्रति भाग
१०३. नाडी-तत्त्वदर्शनम्—सयत्देव वासिष्ठ ६०-००
१०४. षट्कर्मशास्त्रम्—जगदीशाचार्य १५-००
१०५ परमाणुदर्शनम्— „ १५-००
१०६. मनुष्यमात्र का परममित्र स्वायंभुव मनु—पं० भगवद्दत्त रिसर्चस्कालर ५-००
१०७. आहार-दर्पण—पं० रामगोपाल वैद्य ३-००

प्रकीर्ण-ग्रन्थ

१०८ सत्यार्थप्रकाश (शत' दी सस्क०)१००-००
१०९. ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन—(चार भागों में) सम्पूर्ण १४०-००
११०. भागवत-खण्डनम्—(भाषार्थ सहित) ४-००
१११. ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन—यु० मी० । विविध परिशिष्ट सहित ४०-००
११२. जगद्गुरु दयानन्द का संसार पर जादू—मेहता जैमिनि ३-००
११३. व्यवहारभानु—ऋषि दयानन्द ३-००
११४. आर्याद्देश्यरत्नमाला—ऋषि दयानन्द १-००
११५. कन्योपनयन-विधि-पं०महाराणो शङ्कर४-००
११६ ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से संबद्ध कतिपय महत्त्वपूर्ण अभिलेख १०-००
११७. मेरी दृष्टि में—स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके कार्य—यु० मी० । ५०-०० नया संस्करण १००-००
११८. अथ शास्त्रार्थ और सद्धर्मविचार २-००
११९. स्व० पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु-जन्म-शताब्दी समारोह-स्मारिका (अक्तूबर १९९२) बढ़िया कागज आकर्षक जिल्द १००-००
१२०. जिज्ञासु-रचना-मञ्जरी— प्रथम भाग ८०-००; द्वितीय भाग १००-००
१२१. आर्यसमाज के दिग्गज विद्वानों का शास्त्रार्थ— २५-००
१२२. दयानन्द अंक (१-५) प्रत्येक अङ्क १२-००
१२३. दयानन्द-अङ्क(६)वेदवाणी १९८९)१५-००

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान—

१. रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, जिला—सोनीपत (हरयाणा)

२. रामलाल कपूर एण्ड संस पेपर मर्चेन्ट्स—

२५९६ नई सड़क, देहली ✻ गुरु बाजार, अमृतसर ✻ विरहाना रोड, कानपुर

ओं भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर।
भूरि घेदिन्द्र दित्ससि॥ ऋ० ४।३२।२०॥

हे परमेश्वर ! आप बहुत देनेवाले हैं, हमें बहुत धन-धान्य प्रदान कीजिये। अल्प नहीं, विपुल ऐश्वर्य से हमें सम्पन्न कीजिये। प्रभो ! आप से याचना क्यों करें ? आप तो स्वयं ही हमें प्रभूत धन देने के इच्छुक हैं।

ओं भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन्।
आ नो भजस्व राधसि॥ ऋ० ४।३२।२१॥

हे विघ्न-बाधाओं को दूर करने वाले, सर्वव्यापक प्रभो ! आप जन-जन में विख्यात हैं, क्यों कि आप सब को सब कुछ प्रदान कर रहे हैं। आप की कृपा से हम लौकिक-अलौकिक धनों का उपभोग करें।

RAM LALL KAPOOR & SONS

WHOLE SALE PAPER MERCHANTS

Consignee Agents—

Madhya Bharat Papers Ltd.
R. C. Paper Mills (P) Ltd.
C. K. Paper & Board Mills.
Ram Paper Mills Ltd.

Office:—

2596 Nai Sarak, Delhi
3265794
phone
3266131

Guru Bazar
AMRITSAR
Phone 42689

Bazar Kharadian
LUDHIANA
Phone 20879

Adda Hoshiarpur
JULLUNDUR CITY
Phone 56757

AMBALA CANTT
Nichelson Road,
Phone 21025

Sadar Bazar
PATIALA
Phone 71758

Bay Shop 11, Sector 27-D, CHANDIGARH, Phone 29280 Fax. 43280

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा ।
मर्य इव स्व ओक्ये ॥ (ऋ० १।९१।१३॥

(From Lectures on Yoga Meditation)

Cows move and graze joyfully, In pasture fields to enjoy their feed,
So does a man move so freely, In his own house to fill all need.
In a similar manner, O Soma Lord, Do descend in joy and freedom,
Reclining relaxing, O Divine Lord, Making our hearts your blissful kingdom.
May our hearts be your blessed abodes, Ever flowing with love and wisdom,
May you whisper and walk in our inner roads, Leading us on to your hilarious kingdom.

हमारे प्रकाशन

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती कृत

१ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका की विस्तृत व्याख्या
भूमिका भास्कर—भाग १, २०×३०/८ पेजी ६०० पृष्ठ मू० १५०/-
भूमिका भास्कर—भाग २
२०×३०/८ पेजी ६०० पृष्ठ मू० १५०/-
२. वेदार्थ भूमिका
(भूमिका भास्कर की अवतरणिका) मू० २५/-
३. आर्यों का आदिदेश और उनकी सभ्यता 60/-
४. The Brahma Sutra –Pages 611
Hard Bound Rs. 150/-
५. Vedic Concept of God Rs. 30/-
६. सत्यार्थ भास्कर— प्रथम भाग ४००-००
द्वितीय भाग ३००-००

श्री देवेन्द्रकुमार कपूर कृत

१. वैदिक पीयूषधारा मू० १५/-
२. Vedic Cancept of Yoga Meditation—Hard Bound 50/-
Paper Back 30/-
३. Lectures on Yoga Meditation Rs. 45/-
४. Success Motivating Vedic Lores
Hard Bound Rs. 35/-
५. Vedic Lores PaperBack Rs. 15/-

प्राप्ति स्थान – देवेन्द्र कुमार कपूर
इन्टरनैशनल आर्यन फाउण्डेशन ३०२ कैप्टन विल्ला, मौंट मेरी रोड, बान्दरा, बम्बई-५०
श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत (हरियाणा) १३१०२१

With best compliments from :

ISHA STEEL TREATMENT
VIKROLI, BOMBAY-83

त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् ।
दक्षिणा पात्वंहसः ॥ ऋ० १।१८।५॥

हे (ब्रह्मणस्पते) ब्रह्माण्ड के पालन करने वाले जगदीश्वर (त्वम्) आप (अंहसः) पापों से जिसकी रक्षा करते हैं (तम्) उस धर्मात्मा यज्ञ करने वाले (मर्त्यम्) विद्वान् मनुष्य की (सोमः) सोम लता आदि ओषधियों के रस (इन्द्रः) वायु (च) और (दक्षिणा) जिससे वृद्ध को प्राप्त होते हैं, ये सब (पातु) रक्षा करते हैं।

जो मनुष्य अधर्म से दूर रहकर अपने सुखों के बढ़ाने की इच्छा करते हैं, वे परमेश्वर की उपासना करके सोम इन्द्र और दक्षिणा इन पदार्थों का युक्ति के साथ सेवन करें।

Phone 3313548

LUBRICHEM

413, Ashoka Estate, 24, Bara Khamba Road,

NEW DELHI - 110001

Manufacturers of :

INDUSTRIAL CHEMICALS

AND

PREVENTIVE OILS

&

JUTE TWINE

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया ।
अकारि रत्नधातमः ॥ ऋ० १।२०।१॥

(विप्रेभिः) बुद्धिमान् विद्वान् लोग (आसया) अपने मुख से (देवाय) अच्छे-अच्छे गुणों वा भोगों से युक्त (जन्मने) वर्तमान व दूसरे जन्म के लिये जैसी (रत्नधातमः) रमणीय सुख जिससे प्राप्त हो तथा (अयम्) विद्या से अनुष्ठान की हुई परमेश्वर की (स्तोमः) स्तुति करते हैं, वह वैसे जन्म और भोगों को देनेवाली होती है।

इस मन्त्र में पुनर्जन्म का विधान जानना चाहिये। मनुष्य जैसे कर्म क्रिया करते हैं वैसे ही जन्म और भोग उनको प्राप्त होते हैं।

MONOPLAST

Liquid Hydrocarbon Resin Tackifier and Process Aid for Extruded and Calendered Sheets and Profiles, Adhesives and Sealants, Microcellular Products, Hose Pipes and Belting, Rubber Rolls and Moulded Goods.

VINOPRENE-VINOPLAST

Specially Designed PVC/NBR Elastomer for the Manufacture of Gas Tubing, Oil Hoses, Micro Sheets, Cables, Conveyor Belts, Printing Rolls, Oil Seals, Rice Dehusking Rolls and Auto Rubber Parts

Speciality Products

CHLORUB

(Chlorinated Rubber)

For Adhesives, Sealants, Rubber to Metal Bonding, Chemica) Resistant, Coating

RISHICHLOR

(Chlorinated Paraffins)

Plasticizer for NBR, Neoprene, Hypalon, PVC/NBR Polysulphides and Polyactylate Rubbers Excellent Replacement for high cast Plasticizers like DOP, DBP etc. Used as Fire Retardant Additive in Rubber and PVC.

RISHI ROOP POLYMERS (Pvt) *Ltd.*

65, ATLANTA, NARIMAN POINT, BOMBAY-400021

Phone : 240148, 244125 **Telex : 011-84780 RPL-IN**

मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे ।
स देवान्विश्वान्बिभर्त्ति ।। ऋ० ३।५९।८।।

हे मनुष्यो ये (पञ्च) पांच प्राण आदि के सदृश (जनाः) विद्वान् लोग जिस (अभिष्टिशवसे) अपेक्षितबलयुक्त (मित्राय) मित्र के सदृश सब को सुख देनेवाले परमात्मा के लिये (येमिरे) यमादि साधन साधते हैं। (सः) वह (विश्वान्) समस्त (देवान्) सूर्य आदिकों को (बिभर्त्ति) धारण तथा पोषण करता है ऐसा जानो।

इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे रोके गये प्राण वायु इन्द्रियों को रोकते हैं, वैसे ही योगीजन समाधि से परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

Grams : 'Pharmaglass'

Tele : 44460
661684

M/S. RADHA GLASS WORK

Manufacturers of

NATURAL GLASS AMPOULES,
VIALS, TABLET TUBES
AND
TEST TUBES.

Factory :—

Modern Indsutrial Estate, BAHADURGARH
(Distt. Rohtak) Haryana

को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥ ऋ० ४।२५।१॥

हे विद्वन् (अद्य) इस समय (कः) कौन (देवकामः) विद्वानों की कामना करने वाला (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त के (सख्यम्) मित्रत्व की (उशन्) कामना करता हुआ (नर्यः) मनुष्यों में श्रेष्ठ धर्म का (जुजोष) सेवन करता है, (कः वा) अथवा कौन (महे) बड़े (पार्याय) दुःख के पार उतारने वाले (अवसे) रक्षण आदि के लिये (समिद्धे) प्रसिद्ध (अग्नौ) अग्नि में (सुतसोमः) सोमरस को उत्पन्न करने वाला हुआ ऐश्वर्य को (ईट्टे) प्राप्त होता है, यह हम लोग पूछते हैं।

जो विद्या और मित्रता की कामना करने वाला सम्पूर्ण जगत् का प्रिय आचरण करता और सब का रक्षण करता हुआ अग्नि में होम आदि से प्रजा का हित करे, वही जगत् का हित चाहने वाला है।

Grams—WATER MARK

Tele—8368814, 8323475
8374651

Fax : (22) 8379403

With best compliments from :

M/s. Adarsh Industries

Kapoor House, A-37 Street No. 2, MIDC
Andheri (East) BOMBAY—400093

Manufacturers of
Machine made Glass Ampoules, Vials and Tables tubes.

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः ।
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक् पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥ ऋ० ३।१७।१॥

हे मनुष्यों ! जो (समिध्यमानः) उत्तम प्रकार प्रकाशमान (विश्ववारः) सकल जन का प्रय (शोचिष्केशः) तेजरूप केशवान् (घृतनिर्णिक्) तेजस्वी (पावकः) पवित्रकर्ता (सुयज्ञः) सुन्दर यज्ञ जिस से हों, वह अग्नि (समक्तुभिः) उत्तम रात्रियों से (यजथाय) संग के लिये (प्रथमा) प्रसिद्ध (धर्म) धर्मों को (अज्यते) उत्तम प्रकार प्रसिद्ध करता तथा (देवान्) उत्तम गुणों का (अनु) प्रस्तार करता है, उसको अच्छे प्रकार प्रेरणा करो ।

जो अति गुणों से युक्त अग्नि आदि पदार्थों से कार्यों को सिद्ध करें तो सम्पूर्ण कार्य मनुष्य सिद्ध कर सकते हैं ।

★ ★ ★ ★

With best compliments from

KAPOOR INDUSTRIES

Manufacturers & Exports of

Leather Bags, Wallets Shoes, Readymade Garments Etc.

Manufacturers of

Machine Made Glass Ampoules, Vials and Tablet Tubes

Bombay Office :
54-A, Nariman Bhavan,
Nariman Point,
BOMBAY, 400 021

Telephones { 233102 231394

Telex : 'SHIV' 011–2447

Calcutta Office :
85, Park Street,
CALCUTTA, 700 016

Telephones { 248631 248924 249921

Telex . 'MATA' 021–2126

सम्पादक—विजयपाल विद्यावारिधि के प्रबन्ध से रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस बहालगढ़ से मुद्रित तथा वेदवाणी कार्यालय जी० टी० रोड़, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा) से १ दिसम्बर १९९४ को प्रकाशित ।